जापान का संविधान

(विभिन्न विश्वविद्यालयों के बी ए तथा एम ए कक्षाओं के लिए)

लेखक

डा० कुंजबिहारीलाल गुप्त,

एम ए (हिन्दी), एम० ए० (राजनीति विज्ञान),

पी एच, डी आर० ई० एस

अध्यक्ष राजनीति विभाग, राजकीय महाविद्यालय, कोटा

विद्या भवन

पुस्तक प्रकाशक जयपुर-३

प्रकाशक—विद्या भवन, चौड़ा रास्ता, जयपुर

सर्वाधिकार सुरक्षित

प्रथम संस्करण १९६७.

मूल्य तीन रुपये पिचेहत्तर पैसे मात्र

मुद्रक—शिवराज प्रिंटर्स, जयपुर।

आमुख

जापान का नूतन संविधान आपके सम्मुख है। इस पुस्तक का प्रणयन करते समय मेरा एकमात्र ध्येय भारतीय छात्रों को जापान जैसे प्रगतिशील देश की शासन प्रणाली से अवगत कराना है।

सभी जानते हैं कि जापान एक ऐसा नवोदित राष्ट्र है, जिसने बहुत ही अल्प समय मे जीवन के प्रत्येक क्षेत्र मे आश्चर्यजनक प्रगति की है। इसका एक मात्र श्रेय वहाँ के संविधान तथा नागरिकों को ही दिया जा सकता है। जापान व भारत को अनेक समस्याओं मे समानता होने के कारण भारतीय विद्यार्थी के लिए आज यह अनिवार्य हो गया है कि वह जापानी शासन व्यवस्था का अध्ययन करे तथा अन्य देशो की शासन प्रणालियो से उसकी तुलना करते हुए उसका मूल्यांकन करे, और अपने देश को प्रगतिशील बनाने के लिए उससे प्रेरणा ले।

प्रस्तुत कृति की निम्न विशेषताए उल्लेखनीय हैं—

(i) भाषा को यथासाध्य सरल, सुबोध और विषयानुकूल रखा गया है।

(ii) पारिभाषिक शब्दो को हिन्दी तथा अंग्रेजी, दोनो भाषाओं मे लिखा गया है।

(iii) आवश्यक स्थानो पर जापानी शासन व्यवस्था की भारत और इंगलैंड की शासन व्यवस्थाओं से तुलना की गई है।

इस पुस्तक के प्रणयन तथा प्रकाशन मे लेखक को अनेक व्यक्तियो से सहयोग तथा प्रोत्साहन प्राप्त हुआ है, जिनमे श्री सीताराम अग्रवाल, प्राध्यापक, महाराजा सयाजीराव विश्वविद्यालय, बडौदा, का नाम विशेष उल्लेखनीय है। इस पुस्तक का अधिकांश श्रेय उन्ही को है। उनकी प्रेरणा, प्रोत्साहन तथा सक्रिय सहयोग के बिना लेखक के लिए इस कृति का प्रकाशन करना सभव न था। इसके अतिरिक्त मैं उन सभी लेखको के प्रति भी ज्ञान-ऋण स्वीकार करता हू जिनके ग्रन्थो से मुझे अपूर्व सहायता मिली। अन्त मे, मैं भारत स्थित जापानी राजदूतावास के अधिकारियो के प्रति भी आभार प्रदर्शित किए बिना नहीं रह सकता, जिन्होने देश के प्रशासन सबन्धी साहित्य उपलब्ध कर इस पुस्तक का नवीनतम रूप प्रदान करने मे योग दिया।

जिन ख्यातिप्राप्त विद्वानो की कृतियो से सहायता ली गई है उल्लेख यथा स्थान कर दिया गया है।

—कुञ्जबिहारी लाल गुप्त

१२ मई, १९६७

कोटा।

पठनीय ग्रन्थ

1	Colegrove K W	The constitutional development of Japan (1951)
2	G Lowell field	Governments in modern society (1959)
3	Gunthur John	Inside Asia (1942)
4	Ike Nobutaka	Japanese Politics-an Introductory survey (1957)
5	Ito	Commentaries on the Constitution (1889)
6	Kahin George Mc Tarnav	Major Governments of Asia (1958)
7	Kitazawa N	The Government of Japan(1929)
8	Line barger & others	Far Eastern Governments and politics
9	Malli John M	Government & politics in Japan
10	Munro William Bennet	The Government of Europe
11	Norman E Herbert	Japan s Emergence as a Modern State
12	Ogg and zink	Modern Foreign Government
13	Quigley & Turner	The new Japan
14	Uyehara	Political Development of Japan
15	Yanaga C	Japanese people & politics(1956)

विषय सूची

1

देश और निवासी

[Land and the People]

देश

१. भौगोलिक स्थिति—जापान, जिसे 'उदीयमान सूर्य का देश' (Land of the rising sun) कहकर सम्बोधित किया जाता है, एशिया महाद्वीप के सुदूर पूर्व मे एक नतोदर चाप के सदृश स्थित है। स्वयं जापानियो का अपने देश को इस प्रकार की संज्ञा देना नितान्त युक्ति-सगत प्रतीत होता है। उसकी आकृति को देखकर ऐसा आभास होता है कि मानो यह एशिया की एक भुजा हो। यह नवोदित राष्ट्र २०° उत्तरी अक्षांश से ४५° उत्तरी अक्षांश और १२९° पूर्वी देशान्तर से १४७° पूर्वी देशान्तर तक फैला हुआ है।[1] इसके पूर्व एव दक्षिण मे प्रशान्त महासागर और पश्चिम मे जापान-समुद्र है। चारों ओर समुद्र से घिरे होने के कारण, इसका कोई भाग समुद्र से ४५ मील से अधिक दूर नही है।

जापान अनेक छोटे-छोटे द्वीपो का एक पुञ्ज है, जिनमे होकेडो, होन्शू, शिकोका और क्यूशू प्रमुख हैं। इनके अतिरिक्त उसके १५०० मील समुद्र तट पर,[2] जो क्यू चटका के दक्षिणी भाग से लेकर फिलीपाइन द्वीप समूह के उत्तर तक फैला हुआ है, लगभग ५०० द्वीप और स्थित हैं, परन्तु वे आकार मे बहुत छोटे हैं। इन समस्त द्वीपो का क्षेत्रफल लगभग १,४३,००० वर्ग मील है, जो सयुक्त-राष्ट्र अमेरिका के केलीफोर्निया राज्य से थोडा ही कम है।[3] द्वितीय विश्वयुद्ध के अनन्तर, जापान-राज्य से लगभग ४५% भूमि छीन ली गई, अन्यथा उससे पूर्व उसका क्षेत्रफल लगभग २,६०,००० वर्गमील था[4] और फार्मूसा तथा कोरिया आदि द्वीप भी उसमे

---

1. Kripa Shankar Gaur. An Advanced Geography of the Asia, P. 123
2. G. Etzel Pearey & Associates: World Political geography P. 611.
3. G. M. Kahin: Major Governments of Asia, P. 136.
4. Ogg and Zink : Modern Foreign Governments, P. 947.

सम्मिलित थे। वर्तमान समय में यह भारत के आठवें और संयुक्त-राष्ट्र अमेरिका के बीसवें भाग के बराबर है, किन्तु यूनाइटेड किंगडम (United Kingdom) से अब भी डेढ़ गुना है।

२. धरातल, समुद्र तथा सरिताएं—जापान मुख्यतः एक पर्वतीय देश है, जिसमें १८ जाग्रत एवं अनेक सुप्त ज्वालामुखी पर्वत हैं। यह पर्वतीय प्रदेश समस्त देश की ८५% भूमि पर फैला हुआ है, जिस कारण यहाँ विस्तृत मैदानों का बडा अभाव है। इसीलिए यहां की नदियां भी बड़ी तीव्रगामिनी हैं, क्योंकि ढालू पर्वतों से निकलकर वे सीधी समुद्र में गिर जाती हैं। उन्हें बहने के लिए समतल भूमि नहीं मिल पाती। समुद्र-तट कटा-फटा एवं शान्त है। स्थान-स्थान पर वह स्थल काटकर देश के अन्दर घुस गया है, जिससे उसमें बड़ी-बड़ी लहरें अथवा तूफान नहीं आते। परिणाम-स्वरूप यहाँ पर ऐसे बन्दरगाहों की कमी नहीं है, जिनमे जहाज निर्भय होकर ठहर सकें।

चारों ओर समुद्र होने के कारण, जापान विश्व के दो जलमार्गों का संगम। उनमें से प्रथम तो योरुप से प्रारम्भ होकर दक्षिण-एशिया से होता हुआ योकोहामा तक पहुंचता है, और द्वितीय उत्तरी-अमेरिका से चलकर जापान होता हुआ फिलीपाइन द्वीप समूह तक जाता है।

३. जलवायु—जापान की जलवायु पर उसके समुद्र से घिरे होने, समुद्री जल धाराओं, अक्षांशीय फैलाव, देशान्तरीय सकरापन और धरातलीय रचना आदि का गहरा प्रभाव पड़ता है। संक्षेप में, शीतोष्ण कटिबन्ध में स्थित होने के कारण, उसकी जलवायु चीन की जलवायु से बहुत कुछ मिलती-जुलती है। चारों ओर समुद्र होने से यहां वर्षा भी अधिक होती है। इस कारण यहां की नदियां अपने साथ लाई हुई मिट्टी से समुद्र तट पर डेल्टा बनाती हैं। जापान के उत्तर में एक शीतल जल धारा बहती है, जिससे वह भाग इतना शीतल रहता है कि कभी-कभी तो वहां पारा जमने लगता है दक्षिण में क्यूरोसीयो नामक ऊष्ण जलधारा के बहने से उस भाग के बन्दरगाह पूरे वर्ष खुले रहते हैं और जमने नहीं पाते। जब ये दोनों धाराएं आपस में मिलती हैं, तब बड़े जोर का कुहरा पड़ता है।

४. भौगोलिक स्थिति का जन-जीवन पर प्रभाव—जापान के पहाड़ी-प्रदेश, ज्वालामुखी पर्वतों, शीतोष्ण जलवायु तथा कटे-फटे समुद्र-तट ने वहां के निवासियों के रहन-सहन, जीवन-यापन के साधनों और उनके उद्योगों पर इतना अवर्णनीय प्रभाव डाला है कि उसकी राजनैतिक महत्वाकांक्षा भी उनके प्राकृतिक बन्धनों के प्रति एक प्रतिक्रिया मात्र है।

जापान का पहाड़ी प्रदेश यहाँ के जन-जीवन के लिए बड़ा निर्दयी तथा निर्मम सिद्ध हुआ है। सक्रिय ज्वालामुखी पर्वतों के कारण, यहाँ प्रतिदिन

भूकम्प आते रहते हैं, जिस कारण यहा पत्थर के मकान बनाना नितान्त असम्भव हो गया है। इसलिए वहा की ९९% जनता पवतो पर उत्पन्न होने वाली लकडी के मकानो मे रहती है और वे भी दो मंजिल से अधिक ऊचे नही होते।

पर्वतीय प्रदेश होने का दूसरा प्रभाव यह पडता है कि इस देश की अधिकांश भूमि पथरीली होने के कारण अनुर्वरा है। भूमि का केवल २०% भाग ऐसा है जहा पर खाद्यान्न उत्पन्न किए जाते हैं, किन्तु वे यहा के निवासियों को पर्याप्त नही होते। फलस्वरूप इस देश के रहने वालो को खाद्यान्नो के लिए दूसरे देशो पर आश्रित रहना पडता है।

तीसरे, भूमि के पर्याप्त न होने के कारण यहा की जनता को समुद्र की ओर उन्मुख होना पडा है। यह समुद्र उन्हे वरदान सिद्ध हुआ, क्योकि उसमे मछलियो का अक्षय भडार भरा पडा है। यद्यपि मछली पकड़ने का काम यहा अति प्राचीन काल से ही होता आया है, किन्तु जनसख्या की वृद्धि के साथ-साथ उसका महत्व विशेष रूप से बढ गया है। वर्तमान समय मे जापान जाने वाले पर्यटकों को समुद्र के निकट पहुंचते ही सकरी समतल-मैदान की पट्टी पर मछेरो के झोपड़ो की लम्बी-लम्बी पंक्तियां दिखाई देने लगती हैं। गत ३५ वर्ष से, यह विश्व मे सबसे अधिक मछली पकड़ता है। आजकल यहा लगभग ६० लाख मीट्रिक टन मछली प्रतिवर्ष पकडी जाती है, जो ससार की कुल मछली पकड का १७% है। इस प्रकार मत्स्योत्पादन ने जापानियो की खाद्य समस्या को बहुत कुछ हल कर दिया है।

वर्षा के आधिक्य और पवतो के ढालू होने से यहा चाय और चावल की उपज भी अधिक होती है।

खाद्यानो की भांति जापान मे खनिज-पदार्थों की बडी कमी है। इस देश मे इतने खनिज-पदार्थ नही मिलते कि जापानी उसे पूरी तरह औद्योगिक देश बना सकें। गंधक अवश्य ऐसा पदार्थ है जो देश की आवश्यकता को पूरा करके विदेशों को निर्यात किया जा सकता है। लोहा और कोयला यहा के लिए यथेष्ट नही पाए जाते। लाहा तो जापान की केवल १३% आवश्यकता को पूरा कर पाता है। कोयल के क्षेत्र भी यहा पर्याप्त नही पाए जाते, जिस कारण जल-विद्युत शक्ति का अधिक विकास करना पडा है। नदियो के तेज प्रवाहित होने से, उनमें जहाज तो नही चल सकते, परन्तु उनसे हाईड्रोइलेक्ट्रिक शक्ति उत्पन्न की जाती है, जिसका उत्पादन अनुमानत ६५ लाख किलोवाट प्रतिवर्ष है। इस प्रकार प्राकृतिक साधनो की कमी होते हुए भी, यहा की परिश्रमी जनता ने औद्योगिक क्षेत्र मे आश्चर्य जनक उन्नति की है और अपने कारखानो मे निर्मित सामान का निर्यात कर लगभग २०% खाद्यान्न बाहर से मगाने को समर्थ हैं। मशीनो, जहाजो और रेलो के निर्माण मे जापान बहुत आगे है। यहा की बिजली और इलेक्ट्रानिक चीजो की माग सब देशो में है।

५ प्रजाति—यद्यपि एशिया के इतिहास में जापान एक महत्वपूर्ण स्थान रखता है, परन्तु उसका प्रारम्भिक वृत्तान्त कल्पना तथा परम्परागत गाथाओं पर आधारित है। यह वृत्तान्त भी केवल नूतन प्रस्तर-युग पर प्रकाश डालता है। अत यह बतलाना बडा कठिन है कि जापान के आदि निवासी कौन थे और कहा से आए थे। इतना अवश्य कहा जा सकता है कि नूतन प्रस्तर-युग मे यहा के निवासी एनू (Ainu) नस्ल के थे जो प्राचीन काकेशियन प्रजाति की एक शाखा थी। कुछ समय पश्चात्, मगोल नस्ल के लोगों ने कोरिया होकर जापान मे प्रवेश किया और वहाँ के आदि निवासियो को परास्त कर उत्तर की ओर खदेड दिया,[5] किन्तु दोनो प्रजातियो की सभ्यता एव संस्कृतियो ने एक दूसरे पर पर्याप्त प्रभाव डाला। इसके अनन्तर दक्षिण की ओर से मलय नस्ल के लोग भी जापान पहुचे और वहीं रहने लगे। फलस्वरूप जापानी प्रजाति पूर्णरूपेण शुद्ध नही है, उसमे काकेशियन तथा मगोल आदि नस्लों का मिश्रण है।

६ जनसख्या—यद्यपि जापान एक बहुत छोटा देश है, फिर भी जन-[illegible] की दृष्टि से विश्व मे उसका पाँचवा स्थान है। केवल चीन, भारत, [illegible] सघ और सयुक्त राष्ट्र अमेरिका ही उससे अधिक जनसख्या वाले देश हैं। सन् १९४५ मे उसकी जनसख्या ७ २२ करोड थी, जो १९६० तथा १९६६-६७ मे बढकर क्रमश ९ ३ और ९ ७ करोड हो गई। इससे यह अनुमान लगाया जाता है कि जापान की जनसख्या बडी तेजी से बढ रही है और सम्भवत निकट भविष्य मे १० करोड हो जावेगी। जनसख्या की वृद्धि का कारण देश की समृद्धि तथा औद्योगिक विकास बतलाए जाते हैं, परन्तु प्रमुख कारण यह है कि यहाँ के निवासी जापान छोडकर विदेशो मे जाकर बसना नहीं चाहते। वे अपनी भूमि का विस्तार कर अपनी आवास की समस्या को हल करने मे लगे हुए हैं।

७ भाषा—जापान के आदि निवासी लिखना नही जानते थे, क्योकि वहाँ कोई लिपि न थी। जब उनको यह इच्छा होने लगी कि वे लिखना सीखे, तब उन्होंने अपने पडोसी देश चीन से लिखने की कला सीखी। इस प्रकार ईसवी सन् के प्रारभ-काल से यहाँ चीनी लिपि का प्रचार हुआ। यही कारण है कि जापानी भाषा चीनी भाषा मे मिलती-जुलती है तथा वहाँ की लिपि भी चीनी लिपि से बहुत कुछ साम्य रखती है। यद्यपि जापानी अपनी भाषा के उच्चारण मे कुछ कठिनाई अनुभव करते हैं, किन्तु उनको स्वदेशी भाषा से बहुत प्रेम है। सभी व्यक्ति प्रधानमंत्री से लेकर एक साधारण लिपिक तथा नागरिक तक अपने देश की ही भाषा को बोलते और उसी मे समस्त कार्य करते हैं। इसका यह अभिप्राय नहीं कि वहाँ अग्रेजी तथा अन्य भाषाओं का प्रचलन न हो। विदेशी भाषाएँ भी पढी

---

5 G M Kahin Ibid, P 136

RESERVED BOOK

तथा व्यवहृत की जाती हैं, किन्तु जापानी भाषा की तुलना मे उनके पढने तथा बोलने वालो की सख्या अधिक नही है। फिर भी विश्व के अन्य देशो मे होने वाली साहित्यिक, राजनैतिक, वैज्ञानिक तथा शैक्षणिक प्रगति से सम्पर्क बनाए रखने के लिए अनेक श्रेष्ठ ग्रन्थो का अनुवाद जापानी भाषा मे हो चुका है और किया जा रहा है। शिक्षा के क्षेत्र मे जापानियो ने अधिक प्रशसनीय प्रगति की है। वर्तमान समय मे वहा अनुमानत: ९९% नागरिक शिक्षित हैं। जनता के शिक्षित होने से सब से बडा लाभ यह हुआ है कि सविधान को समझने तथा उसकी धाराओ को मूर्त रूप देने मे कोई कठिनाई नहीं आ पाती, जिसके फलस्वरूप देश बडी तीव्र गति से प्रगति कर रहा है। शिक्षित होने के कारण ही जापानी समाचार पत्र पढने मे विशेष रुचि रखते हैं।

८. धर्म—जापान मे मुख्यत तीन धर्म के अनुयायी पाए जाते हैं— (i) शिण्टो धर्म (Shintoism) (ii) बौद्ध-धर्म (Budhism) (iii) ईसाई धर्म (Christianity)

शिण्टो धर्म जापानियो का स्वदेशी धर्म है, जो अति प्राचीन काल से माना जा रहा है। इसमे साम्राज्यीय पूर्वज तथा पारिवारिक पूर्वज दोनो ही की पूजा होती है। कुछ विद्वानो का मत है कि यदि धार्मिक दृष्टि से देखा जाए तो यह कोई धर्म नही है, फिर भी द्वितीय विश्व-युद्ध के समय इसे राज धर्म के रूप मे मान्यता दी गई थी। राजधर्म होने के कारण न केवल उसे विशेष सुविधा तथा सहायता ही दी जाती थी, अपितु उसमे रूचि लेने के लिए जनता को प्रोत्साहित भी किया जाता था।

बौद्ध-धर्म का प्रचार सर्वप्रथम भारत मे हुआ था, फिर शनै शनै छठी शताब्दी मे चीन और कोरिया होता हुआ वह जापान पहुचा। इस धर्म के प्रचार ने जापान मे कलाओ को अधिक प्रोत्साहित किया। विद्या और संस्कृति के क्षेत्र मे भी उसने आशातीत प्रगति की।

ईसाई धर्म का भी जापान मे बडे जोरो से प्रचार है किन्तु इसके प्रचारक अधिकतर २० वीं शताब्दी मे ही वहा पहुचे हैं। विद्या के क्षेत्र में इसका भी योगदान सराहनीय है। इन धर्मो के अतिरिक्त वहा और भी धर्म प्रचलित हैं, किन्तु उनके अनुयायियो की सख्या अधिक नहीं है। जापानी जनता धर्मो के प्रति अत्यन्त उदासीन एव सहिष्णु है। यद्यपि अधिकांश जनता बौद्ध-धर्म की अनुयायी है, किन्तु उसके आचार-विचार और रीति-रिवाजो पर शिण्टो धर्म का भी बहुत अधिक प्रभाव है सुना जाता है कि जापानियो के विवाह-सस्कार शिण्टो-धर्म के देवालयो मे सम्पन्न किए जाते हैं, किन्तु मृत्यु के अनन्तर किए जाने वाले सस्कारो मे बौद्ध धर्म की प्रथाओ का ही अनुसरण किया जाता है। निष्कर्षत जापानी किसी विशेष धर्म क

कट्टर अनुयायी नहीं होते और विभिन्न धार्मिक भावनाओं के कारण एक दूसरे का विरोध नहीं करते। यही कारण है कि जापान के राजनैतिक दलों का विकास धार्मिक सिद्धान्तों के आधार पर नहीं हुआ है।

९. निवासी—जापान एक उद्योग प्रधान देश है जिस कारण वहां का जन जीवन बहुत व्यस्त रहता है, फिर भी वहां की जनता के आचार विचार और चरित्र में कुछ ऐसी विशेषताएं परिलक्षित होती हैं, जो वहां के राष्ट्रीय चरित्र का अंग बन गई है। उदाहरण स्वरूप, जापान निवासी प्रारम से ही बड़े सहिष्णु रहे हैं, जिसका कारण उनका अनेक प्रजातियों का मिश्रण होना है। सहिष्णु होने का यह परिणाम हुआ कि उन्होंने उन सभी सभ्यता एवं संस्कृतियों को, जिनके वे सम्पर्क में आए, अपने अनुकूल बनाकर आत्मसात् कर लिया। यह इसी प्रवृति का प्रतिफल है कि वे इंगलैंड की संसदीय प्रणाली को अपने अनुकूल बना सके, अन्यथा यह प्रणाली इस देश के लिए कोई प्राचीन नहीं है।

गुण-ग्राह्यता उनके जीवन की दूसरी विशेषता है। कन्फ्यूशियन परिवार प्रणाली से उन्होंने बड़ों का सम्मान करना तथा उनका आज्ञाकारी बनना सीखा। शिण्टो धर्म और सामंतवादी प्रथा के प्रचलन ने इस गुण को और भी अधिक सुदृढ़ ना दिया। यह इसी गुण के विकास का परिणाम है कि कालान्तर में उनका सामाजिक एवं राजनैतिक जीवन इतना सुंदर एवं आदर्शमय बन गया। इस गुण की प्रधानता के कारण ही जापानी प्रजाजन सम्राट में पूर्ण आस्था रखते हैं तथा उससे अनुशासित होते हैं। इसका यह अभिप्राय नहीं कि जापान में प्रशासन के विरुद्ध कभी किसी ने कोई आवाज नहीं उठाई अथवा आन्दोलन ही नहीं किए। प्रशासन विरुद्ध आन्दोलन तो हुए किन्तु इतने भयंकर नहीं, जितने कि इंग्लैंड और फ्रान्स में।

तीसरे, जापानी स्वभावतः बड़े सज्जन, विनम्र तथा शिष्ट होते हैं। विदेशियों के साथ तो वे विशेष रूप से सौजन्यपूर्ण व्यवहार करते हैं। यदि कोई विदेशी सड़क पर चलते हुए मार्ग भूल जाए तो कोई न कोई जापानी उसे अवश्य ही निर्दिष्ट स्थान तक पहुंचा देता है।

चौथे, नवीन गुणों तथा विचारों को ग्रहण करने की तीव्र प्रवृत्ति होने हुए भी जापानी अपनी प्राचीन मान्यताओं, परम्पराओं तथा संस्कृति को पूर्ववत सम्मान एवं आदर की दृष्टि से देखते हैं और उन्हें स्थिर बनाए रखने का प्रयास भी करते है। यद्यपि नूतन संविधान के निर्माण करते समय, सम्राट के पद को समाप्त करने का उन पर काफी दबाव डाला गया, किन्तु उन्होंने उसे सर्वथा नहीं हटाया।

पांचवे, जापानियों की सबसे बड़ी विशेषता उनकी राष्ट्रीय भावना है। प्रारंभ से ही यहां की जनता में स्वतन्त्रता, समानता, बन्धुत्व तथा एकता के भाव

पाए जाते हैं। ये लोग इतने देश प्रेमी होते हैं कि राष्ट्रहित के लिए सब कुछ न्योछावर करने को तैयार रहते हैं।

छटे जापानी गन्दगी को सहन नही कर सकते। वे स्वय बडी सफाई से रहते हैं और अपने घरो को भी साफ रखते हैं। जापान के किसी भी मोहल्ले मे पहुच जाइए, वह एक दम साफ सुथरा मिलेगा। इसका कारण यह है कि जापान-निवासी अपने घर तथा उसके सामन का हिस्सा तो स्वय साफ करते ही हैं, वे आस पास के स्थानो की सफाई करने मे भी बडा गौरव अनुभव करते हैं। कूडा करकट डालने के लिए एक निश्चित स्थान होता है, जहा पर मोहल्ले के सभी व्यक्ति कूडा डालते हैं।

जापान-निवासी प्रकृति एव सौन्दर्य के बडे उपासक हैं। यद्यपि उनके मकान लकडी के बने होते हैं, किन्तु उनके सामने एक सुन्दर-सा उद्यान लगाने की उनकी विशेष रुचि है। इन उद्यानो को सुन्दर एव आकर्षक बनाने की दृष्टि से उनमे भाति भाति के रग बिरगे फूल उगाए जाते हैं जापानी स्त्रियो को अपने बालो को पुष्पो से सज्जित करने का बडा चाव है। शिक्षित होने के कारण जापानियो का चरित्र बडा उच्च एव उज्वल होता है। वे बडे ईमानदार होते हैं तथा अपने दायित्वो का भली प्रकार से निर्वहन करते हैं। वहा की बसो मे प्राय कण्डक्टर नही होते, परन्तु सभी यात्री बिना भूले बस मे रखे हुए बक्स मे अपना अपना किराया डाल देते हैं। बिना किराया डाले यात्रा करना उनकी प्रकृति के विरुद्ध है। इसी भाति वहा के मजदूर मिलो और कारखानो को अपना समझते है और उसी भावना से प्रेरित होकर उनमे काम करते हैं। यदि दुर्भाग्यवश कभी मिल मे कोई हानि हो जाए तो उसे वे अपनी ही हानि समझते हैं और उसी प्रकार दुःखी होते हैं जिस प्रकार कि मिल मालिक।

अन्त मे जापानी जितने परिश्रमी और उत्साही होते है उतने ही आमोद प्रमोद तथा खेल-कूदो के शौकीन भी। खेलो के विषय मे उनकी ऐसी मान्यता है कि उनसे प्राप्त स्फूर्ति, उन्हे उनके उद्योगो मे अधिक रुचि एव उत्साह प्रदान करती है। उनके मनोरजन के लिए देश मे जगह जगह बाग-बगीचे, पार्क, नृत्य-घर, थियेटर तथा सिनेमा गृह बने हुए हैं।

2.

संवैधानिक विकास की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

[Historical Background of the constitutional Development]

प्रारम्भिक इतिहास—जापान एक ऐसा नवोदित राष्ट्र है जिसका लगभग उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य तक शेष मध्य संसार से कोई सम्बन्ध अथवा सम्पर्क न था।[1] इसका मुख्य कारण यह था कि विदेशी जापान को एक 'रहस्यमय देश' जानते थे और इसलिए उससे सम्बन्ध स्थापित करना ठीक नहीं समझते थे। अत विश्व के इतिहासकारों को जापान के प्राचीन इतिहास के सम्बन्ध में कोई जानकारी प्राप्त न हो सकी। दूसरे जापानियों ने स्वयं भी अपने आदि पुरुषों के विषय में कुछ नहीं लिखा। सम्भवत इसका कारण यह है कि प्रारम्भिक युग में जापानी लिखना पढ़ना नहीं जानते थे क्योंकि उनकी कोई लिपि न थी।[2] तीसरे जापानी अपने सम्राट को ईश्वर का स्वरूप मानते थे। अत. उसके विषय में लिखना या आलोचना करना उनकी संस्कृति के विरुद्ध था। परिणाम-स्वरूप, जापान का प्राचीन इतिहास प्रमाणिक रूप में उपलब्ध नहीं होता है। अत वह कल्पना एव दन्तकथाओं पर ही आधारित है। जापानियों की मान्यता है कि जापान का प्रादुर्भाव 'इजानगी' नामक देवता तथा 'इजानमी' नामक देवी के संयोग से हुआ। कहते है जब इजानगी देवता अपनी बायीं आख धो रहा था तब अमातेरसु ओमीकमी (सूर्य देवता) की उत्पत्ति हुई। इस देवता के पौत्र का नाम निनिगो-नो-मिकोतो था। वह भू-मण्डल पर प्रशासन करने के लिये सर्वप्रथम क्यूश-शू नामक द्वीप में प्रगट हुआ। प्रगट होते समय वह रत्न, खड्ग और दर्पण तीन राज्य चिन्हों को धारण किए हुए था। इसी देवता का प्रपौत्र जिम्मू-तेनो था जो ६६० ई० पू० में जापान का प्रथम सम्राट हुआ। इसी दन्त-कथा के आधार पर जापानी सम्राटों को भगवान सूर्य को

1 "Until 1850 Japan was largely cut off from the rest of the civilised world—isolated, unvisited and mysterious. She had no wish to rise or trade with other countries."

—Ian Thomas : The rise of modern Asia. P. 43.

2. G. Etzel Pearcy and Associates : Ibid, P 618.

सन्तान माना जाता है। अपने आदि पुरुष की भाँति यहाँ के सम्राट भी सिंहासनारूढ होते समय रत्न, खड्ग और दर्पण धारण करते हैं। नूतन सविधान लागू होने तक ये देवपुत्र माने जाते थे।

जापान के सर्वैधानिक इतिहास को चार भागो मे विभक्त किया जाता है।

१ आदियुग (प्रारम्भ से लेकर ११८५ ई० तक),

२ सामन्तशाही युग (११८५ से १८६७ ई० तक),

३ मेइजी युग (१८६७ से १९४६ ई० तक) तथा

४ आधुनिक युग (१९४६ से आज तक)

१. आदियुग (प्रारम्भिक काल से ११८५ तक)—प्रारम्भ से लेकर सातवी शताब्दी तक जापान अनेक छोटे-छोटे राज्यो मे विभक्त था। इन राज्यो पर कबीले एव प्रजातिया राज्य करती थी। सभी राज्यो के निवासी समान देवी देवताओ की पूजा करते थे और एक ही राजा की आधीनता मे रहते थे। इन सभी राज्यो मे यमतो का राज्य अधिक शक्तिशाली था। अत सभी राजा उसको अपना सम्राट मानते थे। यमतो के राजवश मे जिम्मू तेनो हुआ, जिसे जापान का प्रथम सम्राट कहा जाता है। कालान्तर मे इस वश के राजाओ की शक्ति अधिक बढ गई और राज्यसत्ता केन्द्रीकृत हो गई। अब प्रमुख राजकर्मचारी भी केन्द्र द्वारा नियुक्त किये जाने लगे। छोटे-छोटे राज्यो के राजा सम्राट के सामने सामन्तो की स्थिति मे काम करते थे। पाचवी शताब्दी के प्रारम्भ से चीनी सभ्यता और सस्कृति का जापानी राज्यो पर प्रभाव पडने लगा। जापानियो की यह विशेषता रही है कि वे अपने से अधिक उन्नत सभ्यता, सस्कृति तथा ज्ञान विज्ञान को दूसरो से सीखकर आत्मसात कर लेते हैं। चीनी सभ्यता से प्रभावित होकर तत्कालीन अभिभावक प्रिंस शोटोकू (Shotoku) ने जापान को एक शक्तिशाली राष्ट्र बनाने की दृष्टि से सन ६०४ ई० मे सत्रह धाराओ का लिखित सविधान तथा चीनी पञ्चाङ्ग देश मे प्रचलित किया। लिखित सविधान की ओर जापान का यह पहला कदम था। इस सविधान पर बुद्ध धर्म और चीनी केन्द्रीकृत नौकरशाही प्रथा का बडा प्रभाव था। सम्राट की सहायता के लिये सरकार प्रतियोगिता के आधार (Competitive basis) पर कर्मचारी नियुक्त करने लगी। भूमि का स्वामित्व सम्राट मे निहित कर दिया गया, और उसे कृषको मे उनके परिवार के सदस्यो की सख्या के अनुसार विभक्त कर दिया गया। यह भी निश्चित हुआ कि समान वितरण की दृष्टि से भूमि को कुछ समय बाद पुन बाटा जाय। कृषको का यह दायित्व निश्चित किया गया कि वे सम्राट को मजदूरी, सैनिक सहायता, अथवा नगद धन—किसी भी रूप में कर दें।[3] इस प्रकार सम्राट् की शक्ति बहुत अधिक बढ गई तथा

3. Kahin . Ibid, pages 136, 137.

वह धर्म का अध्यक्ष, प्रशासन का सर्वोच्च संचालक तथा सेना का प्रधान सेनापति बन गया।

२ सामन्तशाही युग (सन् ११८५ से १८६७ ई० तक)—चीनी पद्धति पर आधारित उपर्युक्त प्रशासन अधिक स्थायी न रह सका, क्योंकि वह तत्कालीन जापानी परिस्थितियों के अनुकूल न था। केन्द्र द्वारा नियुक्त राज्य कर्मचारी वर्ग परम्परागत होने लगे, क्योंकि प्रतियोगिता के आधार पर नियुक्ति करने का चीनी सिद्धान्त जापानी कर्मचारियों की नियुक्ति में चल नहीं सका। राज्य कर्मचारियों को मिलने वाली जागीरें भी कुलों में स्थिर हो गई। न केवल विविध राजकीय पदों पर, अपितु जागीरों पर भी विशिष्ट कुलों का वंशागत अधिकार स्थिर हो गया। परिणामस्वरूप, सामन्ती प्रथा का अभ्युदय होने लगा। प्राचीन राजकर्मचारी जागीरदार बन गये। अब वे प्रयास करने लगे कि अपनी जागीरों की वृद्धि करें और सम्राट को किसी प्रकार का कर न दें। अपनी जागीरों की सुरक्षा के लिये उन्होंने कुछ सैनिक रखे। जापानी प्रजाजन सामन्तों की सेना में आमदनी के लोभ से आकृष्ट होकर भरती हो गए। सामन्त उन्हें उनकी सेवाओं के बदले चावल देते थे। धीरे-धीरे सामन्तों की शक्ति बढ़ने लगी और उन पर केन्द्रीय सरकार का आधिपत्य केवल नाममात्र का रह गया। इतना होते हुए भी सामन्त सम्राट् को आदर व सम्मान की दृष्टि से देखते थे क्योंकि उनकी दृष्टि में वह ईश्वर का स्वरूप था। इसलिये वे यह कभी नहीं चाहते थे कि अपने देव-तुल्य सम्राट को उसके स्थान से पृथक कर केन्द्रीय सत्ता को अपने अधीन कर लें, किन्तु इतना अवश्य चाहते थे कि सम्राट पर प्रभाव स्थापित कर प्रशासन को अपने अधीन करलें। कभी-कभी तो ये सामन्त अपने भी क्षेत्रों में वृद्धि करने तथा सम्राट पर अपना प्रभाव जमाने के लिये आपस में भारी संघर्ष करने लगते थे, जिससे देश की शान्ति और न्याय व्यवस्था भंग हो जाती थी। बारहवीं सदी तक जापान में यह दशा आ गई कि ये सामन्त अपने अपने क्षेत्र में पूर्ण स्वतन्त्र राजाओं की भाँति शासन करने लगे। इस शताब्दी के अन्त में मिनामितो नामक परिवार ने सम्राट् पर पूर्ण प्रभाव स्थापित कर देश में सैनिक प्रशासन की स्थापना की, किन्तु उसने सम्राट को अपदस्थ नहीं किया। सम्राट् ने उसे 'शोगुन' (सर्व विजयी सेनानी) की उपाधि से अलंकृत किया, और वह उसी नाम से प्रशासन की समस्त शक्तियों का वास्तविक रूप में प्रयोग करने लगा। इतना होने पर भी उसका शासन स्थायी न रह सका, क्योंकि अन्य सामन्त भी उसकी भाँति प्रबल होने लगे। शक्ति तथा प्रभाव अर्जित करने की इच्छा से सामन्तों में संघर्ष स्थापित हो गया। फलस्वरूप सन् १६०० में तोकूगावा वंश ने समस्त प्रत्याशियों को परास्त कर सम्राट पर एकच्छत्रीय प्रभाव स्थापित कर लिया। सन् १६०३ में उसे शोगुन (General Ismio) की उपाधि प्राप्त हुई।

तोकूगावा प्रशासन—सन् १६०३ से १८६७ तक का समय जापान के इतिहास मे सक्रमण युग रहा है। सैद्धान्तिक दृष्टि से जापान एक राजतान्त्रिक देश था और समस्त प्रशासन सम्राट के ग्राधीन केन्द्रीकृत था। व्यावहारिक रूप मे वह केवल नाममात्र का प्रशासक था, क्योंकि शासन की वास्तविक बागडोर कुछ ही व्यक्तियों के हाथ मे थी, जिनमे सरकारी कर्मचारी, पुजारी तथा सैनिक सम्मिलित थे। ये सभी शोगुन के ग्राधीन रहकर कार्य करते थे। शोगुन उन सबका वास्तविक मुखिया होता था। उसे सम्राट् द्वारा इस पद पर नियुक्त किया जाता था। इस प्रकार प्रशासन दो व्यक्तियों के अधिकार मे रहने लगा—सम्राट् एव शोगुन। सम्राट केवल ध्वज मात्र था। उसकी स्थिति को शिण्टो धर्म ने अत्यधिक क्षीण बना दिया था। इस धर्म के अनुसार वह ईश्वर का स्वरूप समझा जाता था और उसके कार्य प्रशासनिक न होकर धार्मिक रखे गए थे। इस धार्मिक प्रभाव के कारण जापानियो के हृदय मे सम्राट् के प्रति असीम श्रद्धा और भक्ति तो उत्पन्न हुई, किन्तु प्रशासन का क्षेत्र उसके हाथ से निकल गया। अब सम्राट को प्रशासन की बागडोर किसी शक्तिशाली व्यक्ति के हाथ मे छोड़नी पड़ती थी। इसी व्यक्ति को सम्राट 'शोगुन' की उपाधि प्रदान करता था। शोगुन सामन्तो की सहायता से शासन सचालन करता था। इस प्रकार की प्रशासन व्यवस्था केन्द्रित सामान्तवाद (Centralised Feudalism) कहलाती थी। सम्राट अपनी जनता से पृथक क्योतो मे रहता था। उसके खर्च के लिये सरकारी कोष से इतना धन मिलता था कि वह बड़ी शान शौकत से अपना जीवन निर्वाह कर सके। दैवी होने के कारण ज॰ता को उससे मिलने का अधिकार न था, और न कोई व्यक्ति शोगुन के विरुद्ध उससे कुछ कह ही सकता था।

शोगुनो के समय प्रशासन की व्यवस्था अच्छी थी। उनने परामर्श के लिये दो सभाएं होती थी—वरिष्ठ राज-विशारद सभा और कनिष्ठ परामर्श-दात्री सभा वरिष्ठ सभा के सदस्य 'शोगुन' को प्रत्येक कार्य मे परामर्श देते थे। उनकी स्थिति वही थी जो आजकल मन्त्रियो की होती है। समस्त देश सामन्तो मे विभक्त था, जो अपने क्षेत्रीय कार्यों मे पूर्ण रूपेण स्वतन्त्र होते थे। उनके आधीन दास (Vassal) होते थे, जो अपने स्वामी की आर्थिक तथा सैनिक सहायता, करते थे। केन्द्रीय प्रशासक शोगुन येडो (Yado) मे रहता था, जो आजकल टोकियो कहलाता है। वह टोकियो से ही शासन-सचालन करता था। सामन्तों पर नियन्त्रण बनाए रखने के लिये यह नियम रखा गया था कि प्रत्येक सामन्त-स्वय अथवा उसका परिवार कुछ दिनों के लिये 'शोगुन' के कार्यालय में रहे।[4] सामन्तों के कृत्यो की जा कारी के लिये गुप्तचर भी नियुक्त थे।

---

4. Kahin : Ibid, P. 139.

तोकूगावा शोगुनो के समय मे जापान मे शान्ति रही और नगरो की बहुत उन्नति हुई। इन नगरो मे टोकियो का नाम विशेष उल्लेखनीय है। इस नगर मे अधिक सैनिक लोग अधिक सख्या मे रहते थे, इसलिये व्यापारी तथा व्यवसायी दूर-दूर से आकर वहा बसने लगे। सामन्त, सैनिक तथा व्यापारियो ने अपने रहने के लिये सुन्दर-सुन्दर महल तथा भवन बनवाए।

यह शासनकाल देश के इतिहास मे बडा महत्त्वपूर्ण माना जाता है। सामन्त पद्धति के विकास के साथ-साथ यहा एक ऐसी श्रेणी का निर्माण भी हुआ जिसका मुख्य कार्य सैनिक सेवा था। इस श्रेणी के लोग समुराई (Samurai) कहलाते थे। सैनिक क्षमता रखने के साथ-साथ इनको शिक्षित भी होना पडता था। शिक्षा का प्रचार बौद्ध भिक्षुओ द्वारा किया जाता था, और उनके मठ शिक्षा के प्रमुख केन्द्र बने हुए थे।

इस शासन ने अपने समय मे जन-जीवन तथा प्रशासन मे स्थायित्व का सचार किया, परन्तु फिर भी वह अधिक समय तक स्थायी न रह सका। इस व्यवस्था के विनिष्टीकरण के अनेक कारण थे। प्रथम तो यह कि नगरो मे व्यापारी तथा उद्योगपति वर्ग के विकास के सामने सामन्तो की शक्ति क्षीण होने लगी। (२), शोगूनो की पृथक्तावादी विदेशी नीति बडी घातक सिद्ध हुई। ये लोग विदेशियो का अपने देश मे आना अच्छा नही समझते थे, क्योकि वे नही चाहते थे कि विदेशी आकर वहाँ ईसाई धर्म का प्रचार करें तथा उनकी शासन व्यवस्था को किसी प्रकार की हानि पहुचावें। सन् १८५२ मे होमोडोर पैरी नामक अमेरिकन एक जहाजी बेडा लेकर जापान पहुचा, और अपनी सरकार का एक सन्देश ले जाकर जापान सरकार को दिया। इस सन्देश मे कहा गया था कि जापानी बन्दरगाह अमेरिकन व्यापार के लिये खोल दिये जाय, यदि दैवयोग से उनका कोई जहाज जापान के किसी समुद्र तट टूट जाय, तो उसके मल्लाहो तथा यात्रियो को वहाँ शरण मिले तथा अमेरिकन जहाजो को वहा से कोयला तथा अन्य खाद्य सामग्री मिलने की भी सुविधा हो। जब जुलाई १८५३ को पैरी का जहाज योकोहामा की खाडी मे पहुचा तो जापानी सरकार ने उसे आज्ञा दी कि वह समुद्रतट के पास न आवे। लेकिन पैरी ने उस आज्ञा की कोई चिन्ता न की और यह कहकर लौट गया कि वह एक वर्ष पश्चात् पुन- आवेगा, तब तक जापानी सरकार उस पर विचार करले। जब यह पत्र 'शोगुन' के पास पहुचा तो वहा की सरकार इस विषय पर किंकर्त्तव्यविमूढ़ हो गई। रूढ़िवादी (Orthodox) यह चाहते थे कि विदेशियो को जापान मे प्रवेश न करने दिया जाय किन्तु यथार्थवादियो (Realists) का मत इससे भिन्न था। जब यह प्रश्न सम्राट के सामने पहुचा तो उसने भी इनको देश मे प्रवेश करने से मना कर दिया। इस पर भी तत्कालीन सरकार ने अमरीकी सरकार की

उपर्युक्त मागें स्वीकार करली, क्योकि वह उनके प्रवेश पर प्रतिबन्ध लगाने मे असमर्थ थी। अमेरिका के अनन्तर इगलैंड, रूस, होलैंड आदि देशो ने भी जापान से व्यापारिक सन्धिया की। सन् १८५८ मे हैरेस नामक अमरीकी प्रतिनिधि ने जापान से पुनः सन्धि की, जिसके अनुसार जापान के चार नये बन्दरगाह व्यापार के लिये खोल दिये गये। तीन पहले ही खोले जा चुके थे। यह भी निश्चित हुआ कि जापान आयात तथा निर्यात माल पर केवल ५ प्रतिशत कर अमेरिका से लेगा और इस कर मे भविष्य मे उसकी सहमति के बिना कोई वृद्धि न हो सकेगी। इस पर जापान के बडे-बडे सामन्तो ने तोकूगावा वश तथा उसके अध्यक्ष 'शोगुन' का कडा विरोध प्रारम्भ कर दिया और जापानी सम्राट को विवश कर दिया कि वह 'शोगुन' को पृथक कर विदेशियो के साथ की गई सन्धियो को रद्द करदे। देश मे "सम्राट का सम्मान करो, और जगलियो (विदेशियो) को देश से बाहर करो" ("Revere the Emperor and expel the barberians") के नारो की आवाज उठने लगी। अन्तत सन् १८६३ में सम्राट ने यह आज्ञा प्रकाशित कर दी कि विदेशियो का कोई भी जहाज जापान मे न आ सकेगा। सन् १८६७ मे शोगुन केकी (Keiki) के अपने पद पर से त्याग पत्र दे देने पर तोकोगावा शासन का अन्त हो गया। अब प्रशासन सम्बन्धी सभी अधिकार सम्राट के पास आ गये। इस प्रकार सामन्तीय प्रशासन राजतन्त्रीय प्रशासन मे परिवर्तित हो गया। यह परिवर्तन जापान के इतिहास मे पुन स्थापना (Restoration) के नाम से विख्यात है।

३ मेइजी युग (सन् १८६७ से १९४६ ई० तक)—जापान के जिस सम्राट के शासन काल मे उपर्युक्त परिवर्तन हुआ उसका नाम मुत्सुहितो था। उसन सन् १८६७ मे राज्य कार्य सम्भाला था। सम्राट बनने पर उसन मेइजी की उपाधि धारण की। सन् १८६८ मे उसने इगलैंड के १२१५ ई० के महाधिकार पत्र (Magnacharta) के समान एक घोषणा पत्र प्रकाशित किया, जिसमे जापानी प्रजाजनो को नवीन प्रशासन के मूलभूत सिद्धान्तो से अवगत कराया गया। उसमे घोषित किया गया कि *जापान मे प्रशासन सम्बन्धी परामर्श देने के लिये एक विचार-सभा की स्थापना की जावेगी और उसमे जनमत पर पूर्ण ध्यान दिया जावेगा। प्रशासन* की नीति, न्याय एव समता के सिद्धान्त पर आधारित होगी, तथा सभी वर्गों के लोगो को राज्यकार्य मे भाग लेने का अवसर मिलेगा। राज्य के शासन में जिस किसी देश से कोई बुद्धि और ज्ञान की बात मिलेगी, उस नि सकोच ग्रहण किया जावेगा और देश मे फैली हुई निकृष्ट रीतियो को समाप्त कर दिया जावेगा। प्रत्येक व्यक्ति को अपने जीवन यापन का धन्धा इच्छानुसार चुनने का अधिकार होगा।

सम्राट मेइजी द्वारा घोषित किया गया यह पत्र बडा महत्वपूर्ण था क्योकि उस समय देश मे शासन सुधार के लिये बडा आन्दोलन चल रहा था। अत जनता

उपर्युक्त संविधान का विस्तृत वर्णन नवीन संविधान के साथ-साथ प्रत्येक अध्याय मे किया गया है।

४. आधुनिक युग सन् १९४६ से आज तक)—सन् १८८९ से लेकर सन् १९४५ तक जापान का प्रशासन मेइजी संविधान के आधार पर चलाया गया। यद्यपि इस संविधान द्वारा जनतान्त्रिक प्रणाली की स्थापना की गई थी, किन्तु इसका वास्तविक प्रचलन न हुआ, क्योंकि केन्द्रीय सरकार को बहुत अधिक शक्तिशाली बनाया गया था। इस काल मे जापान ने व्यवसाय एवं व्यापार के क्षेत्र मे बहुत उन्नति की। इसके अतिरिक्त शिक्षा की भी आशातीत उन्नति हुई। आर्थिक और सांस्कृतिक उन्नति के साथ साथ जापान साम्राज्यवाद नीति को भी अपनाने लगा, जिसके फल-स्वरूप जापान मे सैनिकवाद का अभ्युदय हुआ। द्वितीय महायुद्ध ने जापान को उन्नति व साम्राज्य विस्तार के लिए एक स्वर्णिम अवसर प्रदान किया। वह जर्मनी तथा इटली के साथ साथ युद्ध मे भाग लेने लगा। इस पर संयुक्त राज्य अमेरिका ने उसके हिरोशिमा और नागासाकी नगरो पर बम गिराये। परिणामस्वरूप जापान ने मित्र राष्ट्रों को सन् १९४५ में बिना किसी शर्त के आत्मसमर्पण कर दिया। जुलाई १९४५ मे पोट्सडम कान्फ्रेन्स मे यह तय किया गया कि जापान की सैनिक शक्ति को नष्ट करके वहां लोकतन्त्र शासन की स्थापना की जाय और जनता को भाषण तथा विचार अभिव्यक्ति की स्वतन्त्रता दी जाय। यह भी तय हुआ कि जापान मे ऐसी व्यवस्था स्थापित की जाय कि वह भविष्य मे कभी भी साम्राज्य विस्तार के लिए प्रयत्न न कर सके। जनरल मैकार्थर (Supreme commander of the Allied Powers) को जापान के शासन का नियन्त्रण करने का भार सौंपा गया और उसके परामर्श के लिए मित्र राष्ट्रों की एक कौंसिल बनाई गई, जिसे अलाइड कौंसिल ऑफ जापान (Allied council of Japan) कहा गया। इस कौंसिल का काम केवल मैकआर्थर को परामर्श देना था। किसी बात पर अन्तिम निर्णय लेना मैक आर्थर के हाथ मे था। इसका प्रधान कार्यालय जापान की राजधानी टोकियो मे स्थापित किया गया। अन्य सुधारो के साथ साथ मैकआर्थर की अध्यक्षता मे फरवरी सन् १९४६ मे जापान के लिए एक की संविधान का प्रारूप तैयार किया गया, जो प्रजातान्त्रिक सिद्धान्तो पर आधारित था। कुछ परिवर्तनो के अनन्तर इस संविधान को जापान की केबिनेट तथा संसद द्वारा नवम्बर सन् १९४६ मे स्वीकृत कर दिया गया।

3.

संविधान की विशेषताएं तथा जापानी प्रशासन के महत्व

Salient Features of the Constitution & Importance of the Study of Japanese Administration

सविधान की विशेषताए—किसी देश का सविधान उसके प्रशासन की ऐसी आधार शिला है, जिसके बिना उसका कार्य सुचारू रूप से चल ही नही सकता। वह जीवन का एक मार्ग है, जिसे वहा के नागरिक स्वय चुनते तथा अगीकृत करते हैं। वह राज्य की प्रगति का सम्बल, उदात्त भावनाओ का प्रतीक तथा भविष्य का प्रकाशस्तम्भ होता है। सविधान प्रत्येक राज्य का अपना होता है और उसी पर उसका अस्तित्व निर्भर करता है। विश्व के अन्य देशों की भाति जापान भी अपना एक सविधान रखता है जो प्रजातान्त्रिक ढग पर १९४६ मे सैनिक सत्ता के सर्वोच्च कमाण्डर जनरल मैक आर्थर द्वारा निर्मित किया गया था। निर्मित होने के अनन्तर, उस पर जापान के मन्त्रीमडल और ससद की स्वीकृति ली गई और फिर ३ मई, १९४७ को देश मे लागू कर दिया गया। यद्यपि यह सविधान अमेरिकी राजनीतिज्ञो द्वारा पश्चिमी शासन प्रणाली के आधार पर निर्मित किया गया है, फिर भी John m maki के शब्दो मे इसमे ऐसा कोई दोष परिलक्षित नहीं होता जिसे दूर किए बिना प्रशासन चल ही नही सकता।[1]

---

1 Japan s 1947 constitution is one of the most interesting—Fundamental laws in the history of modern constitutional government Forced on a nation by military occupation, it is nevertheless warmly supported by a substantial majority of the people as a highly desirable, indeed, indispensable, foundation for a going system of democracy Drafted in deep secrecy and with great rapidity by a group of foreigners it has proved to have no defect serious enough to require immediate amendment utilising completely non japanese concept of sovereignty it has provided Japan with a workable governmental system admirably suited to the country's needs '

—Govt & Politics in Japan—John M Maki P 77.

इस संविधान की विशेषताओं का वर्णन निम्न शीर्षकों में किया जा सकता है—

१. प्रस्तावना—प्रत्येक देश के आदर्श एवं लक्ष्य संविधान की प्रस्तावना में व्यक्त होते हैं, जिनसे ज्ञात होता है कि संविधान किन आदर्शों एवं भावनाओं को लेकर निर्मित किया गया है। जापानी संविधान की प्रस्तावना इस प्रकार है— "हम जापानी प्रजाजन, राष्ट्रीय डायट में विधिपूर्वक निर्वाचित अपने प्रतिनिधियों द्वारा कार्य करते हुए, दृढ निश्चयी होकर अपने तथा आने वाली संतति के लिए पृथ्वी पर स्वतन्त्रता के प्रसार तथा सभी राष्ट्रों के साथ शांतिपूर्ण सहयोग के फल को सुरक्षित रखेंगे तथा यह संकल्प करके कि सरकार के कार्यों द्वारा भविष्य में कभी युद्ध के भयंकर परिणामों का अपने देश में आगमन नहीं चाहते, यह उद्घोषित करते हैं कि प्रभुसत्ता जनता में निवास करती है और दृढसंकल्पित होकर इस संविधान को प्रतिस्थापित करते हैं। सरकार जनता की एक पवित्र धरोहर है जिसके लिए सत्ता जनता से प्राप्त की जाती है, जिसकी शक्तियों का प्रयोग जनता के प्रतिनिधियों द्वारा किया जाता है और जिसके उपकारों से जनता ही लाभ उठाती है। यह संविधान मानवता के इस सार्वभौमिक सिद्धान्त पर आधारित है इससे संघर्ष में आने वाले सभी संविधानों, विधियों, अध्यादेशों तथा आज्ञप्तियों को आज हम अस्वीकार एवं विनष्ट करते हैं। हम जापानी प्रजाजन सदैव के लिए शांति चाहते हैं और मानव सम्बन्धों को नियंत्रित करने वाले उच्च आदर्शों के प्रति गहन रूप से सजग हैं। विश्व के शांतिप्रिय राष्ट्रों के न्याय तथा श्रद्धा में विश्वास रखते हैं, अपनी सुरक्षा तथा अस्तित्व की रक्षा का दृढ संकल्प उठा चुके हैं। शांति बनाए रखने के लिए प्रयत्नशील होते हुए, हम अत्याचार, दासत्व, पीडन और असहिष्णुता का पृथ्वी पर से उन्मूलन का प्रयास करते हुए अन्तर्राष्ट्रीय समाज में सम्मान पूर्ण स्थान प्राप्त करना चाहते हैं। हम स्वीकार करते हैं कि विश्व की सभी जातियों को अभाव तथा भय से मुक्त होकर शांति से निवास करने का अधिकार है।

हमारा विश्वास है कि कोई भी राष्ट्र केवल अपने ही प्रति उत्तरदायी नहीं होता, प्रत्युत राजनैतिक नैतिकता के नियम सार्वभौमिक होते हैं और सभी राष्ट्रों पर जो प्रभुसम्पन्न हैं और सर्वोच्च रूप से अन्य राष्ट्रों के साथ अपने सम्बन्धों को न्यायोचित ठहराते हैं, इनके पालन का दायित्व है। हम जापान निवासी अपने समस्त साधनों द्वारा इन उच्च आदर्शों तथा लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए राष्ट्रीय सम्मान की शपथ लेते हैं।"

उपर्युक्त प्रस्तावना के अनुशीलन से जापानी संविधान से सम्बन्धित निम्न तथ्य स्पष्ट होते हैं :—

प्रथम, "प्रभुसत्ता जनता में निवास करती है, सरकार जनता की पवित्र धरोहर है जिसके लिए सत्ता जनता से ही प्राप्त की जाती है।" इसी प्रकार, "हम

जापानी प्रजाजन .... इस सविधान को प्रतिस्थापित करते हैं।" से अन्तर्निहित तात्पर्य यह है कि सविधान जापानी जनता द्वारा स्वीकृत तथा अगीकृत किया गया है। अत. जनता के अतिरिक्त अन्य कोई—सम्राट, प्रशासनिक अङ्ग तथा दल विशेष—उसे विनिष्ट नही कर सकता।

दूसरे, "जापानी प्रजाजन सम्पूर्ण काल मे शान्ति चाहते हैं।"

तीसरे, "जापानियो का विश्व बन्धुत्व एव अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग की भावना मे अटूट एव स्थिर विश्वास है।"

चौथे, वे विश्व के सभी देशों से *अत्याचार*, *दासता*, *पीडन तथा असहिष्णुता* का उन्मूलन करना चाहते हैं।

२. सविधान की सर्वोच्चता—जापान का सविधान अपने ही शब्दो मे, "देश का *सर्वोच्च कानून (Supreme Law) है*," *जिसका उल्लघन प्रशासन के* किसी अङ्ग द्वारा, किसी भी दशा मे कभी नही किया जा सकता। धारा ९८ उपबधित करती है कि "यह सविधान राष्ट्र की सर्वोच्च विधि होगी और इसके उपबधो के विरोधमे किसी भी विधि, अध्यादेश, साम्राज्यीय आज्ञप्ति अथवा सरकारी अधिनियम, *अथवा उसके किसी भाग को कानूनी प्रभाव प्राप्त नही* होगा।"

इसी भाँति धारा ९९ मे बतलाया गया है कि "सम्राट अथवा सरक्षक, *राज्य के मन्त्री*, डायट के सदस्य, *न्यायाधीश तथा सभी सार्वजनिक* पदाधिकारी इस सविधान का सम्मान तथा समर्थन करने को बाध्य होंगे।"

उपर्युक्त धाराओ के अनुशीलन से स्पष्ट है कि सविधान निर्माताओ ने अमरीकी सविधान की भाँति इस सविधान की धारा तथा नियमो को भी प्रशासन व्यवस्था के प्रत्येक अङ्ग से बहुत ऊपर रखा है—चाहे वह सम्राट हो अथवा कोई प्रशासनिक अधिकारी। सविधान मे यह भी बतलाया गया है कि सम्राट से लेकर साधारण पदाधिकारी तक—सभी व्यक्तियो को सविधान की धाराएँ बाध्यकारी हैं।

३. लिखित सविधान—इस सविधान की तीसरी विशेषता यह है कि यह भारत तथा सयुक्त-राष्ट्र अमेरिका के सविधानो की भाँति एक लिखित सविधान है। जिस प्रकार अमेरिका और भारत मे एक निश्चित निकाय द्वारा निर्मित सविधानो की एक निश्चित तिथि को *उद्घोषणा की गई थी, ठीक उसी प्रकार* जापान मे भी नूतन सविधान जनरल मैक्आर्थर की देखरेख मे निर्मित होकर ३ मई १९४७ को लागू किया गया। यदि जापान के सविधान की तुलना इग्लैंड के सविधान से की जावे तो ज्ञात होगा कि इन दोनो देशो के सविधान मे इस दृष्टि से पर्याप्त अन्तर है, क्योंकि जापान का सविधान लिखित है जब कि इग्लैंड का अलिखित।

४. दुष्परिवर्तनशील संविधान—संशोधन प्रणाली की दृष्टि से संविधान दो प्रकार के होते हैं—(१) सुपरिवर्तनशील और (२) दुस्परिवर्तनशील । जिस संविधान मे विधि निर्माण की सरल प्रक्रिया द्वारा संशोधन किया जा सके, उसे सुपरिवर्तनशील संविधान कहते हैं । इस प्रकार के संविधानो मे साधारण एव संवैधानिक विधि मे कोई अन्तर नही होता । इंग्लैंड का संविधान इसी प्रकार का संविधान है। इसके विपरीत यदि संविधान मे संशोधन किसी विशेष प्रक्रिया द्वारा किया जावे, तो उसे दुस्परिवर्तनशील संविधान कहते हैं । इस प्रकार के संविधानों के अनुसार संविधान मे संशोधन एव परिवर्तन उस रीति से नहीं किया जाता जिस रीति से संसद साधारण कानून निर्मित करती है । जापान का संविधान एक ऐसा ही संविधान है। इस संदर्भ मे धारा ९६ बतलाती है कि "संविधान मे संशोधन के प्रस्ताव का पहल डायट द्वारा किया जावेगा, जिसके पक्ष मे प्रत्येक सदन के कुल सदस्यो के दो तिहाई अथवा उससे अधिक सदस्यो के मत होने चाहिए । तत्पश्चात उन पर डायट द्वारा निर्धारित लोक निर्णय कराया जावेगा । लोक निर्णय मे डाले गए कुल मतो की बहुसंख्या प्राप्त होने पर संशोधनो प्रस्ताव स्वीकृत होगा । इस प्रकार पुष्टि प्राप्त संशोधनो को सम्राट यथाशीघ्र जनता के नाम मे संविधान के मूल वाक्य के रूप मे उद्घोषित करेगा।"[2]

संशोधन की यह प्रक्रिया अत्यन्त जटिल है।

५ संविधान एक संक्षिप्त लेख है—भारतीय संविधान की भाँति जापान का संविधान एक विस्तृत लेख नही है, अपितु अमेरिकी संविधान की भाँति आकार मे बहुत ही संक्षिप्त है । जिस प्रकार अमेरिकी संविधान संक्षिप्त होने के कारण केवल आधे घन्टे में पढा जा सकता है, ठीक उसी प्रकार जापानी संविधान भी। संविधान निर्माताओ ने प्रशासन-संचालन की दृष्टि से केवल मोटी मोटी रूपरेखाओं को ही निश्चित किया है, विस्तृत वर्णन भविष्य के लिए छोड दिया है । इस संविधान मे कुल मिलाकर ११ अध्याय तथा १०३ धाराएँ हैं जो २० पृष्ठो म वर्णित हैं । संक्षिप्त होने के अतिरिक्त संविधान की भाषा अत्यन्त सरल तथा

---

2 Amendments to this constitution shall be initiated b, the Diet, through a concurring vote of two thirds or more of all the members of each House and shall thereupon be submitted to the people for satisfaction, which shall require the affirmative vote of a majority of all votes cast thereon, at special referendum or at such election as the Diet shall specify. [Article 96]

Amendment when so ratified shall immediately be promulgated by the Emperor in the name of people, as an integral part of this costitution

बोधगम्य है, जिसके फलस्वरूप साधारण रूप से शिक्षित व्यक्ति भी कम से कम समय में उसे पढ़ तथा समझ सकता है। इसकी सरलता तथा संक्षिप्तता का सम्भवत यह कारण है कि इसे विदेशियो ने थोड़े समय में बड़ी शीघ्रता से निर्मित किया था।

६ एकात्मक संविधान—जापानी प्रशासन प्रारम्भ से ही एकात्मक रहा है और सम्पूर्ण शक्तियां एक ही केन्द्र से सचालित होती रही हैं। प्राचीन काल में शक्तियाँ सम्राट में निहित थी और वही उसका प्रयोग करता था। नवीन संविधान ने उन शक्तियो को डायट में निहित किया है और उत्तरदायी मन्त्री उनका प्रयोग करते हैं। इसका अभिप्राय यह नही कि जापान में कठोर रीति से केन्द्रीयकरण किया गया है। नवीन संविधान ने विकेन्द्रीकरण की व्यवस्था की है और स्थानीय सरकारो को पर्याप्त स्वतन्त्रता भी प्रदान की है। इस सम्बन्ध में धारा ९२ उपबन्धित करती है कि "स्थानीय सार्वजनिक संस्थाओ की रचना तथा कृत्यो से सम्बन्धित विनियम, स्थानीय स्वराज्य (Local autonomy) के सिद्धान्त के अनुरूप कानून द्वारा विनिश्चित किए जावेंगे।

७ मूल अधिकारों का समावेश—नागरिको के मूल अधिकारो का समावेश करना आधुनिक प्रजातान्त्रिक संविधानो की एक विशेषता है। अमेरिकी राजनीतिज्ञो द्वारा निर्मित होने के कारण अमेरिकी तथा भारतीय संविधानो की भांति इसमे नागरिको के मूल अधिकारो का विशद एव व्यापक वर्णन किया गया है। संविधान के तीसरे अध्याय में निम्न मूल अधिकारो का उल्लेख है—

१—समानता का अधिकार
२—स्वतन्त्रता का अधिकार
३—धार्मिक स्वतन्त्रता का अधिकार
४—शिक्षा प्राप्ति का अधिकार
५—सम्पत्ति का अधिकार
६—शोषण के विरूद्ध अधिकार
७—भौतिक कल्याण तथा सामाजिक सुरक्षा का अधिकार

इन अधिकारो के साथ साथ संविधान में नागरिको के कुछ कर्त्तव्य भी गिनाए गए हैं, किन्तु उनका वर्णन विशद नही है। दूसरे, अधिकारो की प्रत्याभूति देते समय न्यायालयो को उनका उतना स्पष्ट संरक्षक नहीं बनाया गया है, जितना कि भारत में।

८ संसदीय शासन—शासन की दृष्टि से सरकार दो प्रकार की होती है—संसदीय तथा अध्यक्षात्मक। जापान में संसदीय शासन-प्रणाली की स्थापना की गई है। इस प्रणाली के अनुसार सर्वप्रथम जनता वयस्क मताधिकार द्वारा डायट (संसद) का निर्वाचन करती है। तदुपरान्त, डायट के प्रस्ताव पर संसद-सदस्यो में से प्रधानमन्त्री का चयन किया जाता है। प्रधानमन्त्री अन्य मन्त्रियो की

करता है, जिनमे से अधिकाश डायट सदस्यो मे से लिए जाते हैं और वे सामूहिक रूप से डायट के निम्न सदन के प्रति उसी प्रकार उत्तरदायी होते हैं जिस प्रकार भारत तथा इग्लैंड की मन्त्रीपरिषद लोकसभा तथा हाउस आफ कामन्स के प्रति। धारा ६९ के अनुसार निम्न सदन अविश्वास का प्रस्ताव पारित कर मन्त्री-परिषद को पृथक कर सकता है। इनके अतिरिक्त डायट का प्रत्येक सदन सरकार के कार्यो की जाच की माग कर सकता है।[3]

जापान के पूर्ववर्ती सविधान के अनुसार वहा कैबिनेट तो थी, परन्तु मत्री-परिषद प्रणाली न थी, क्योकि उसका डायट के प्रति उत्तरदायित्व विनिश्चित नहीं किया गया था। उस सविधान के अन्तर्गत सम्राट सर्वशक्तिशाली था और सभी मत्री उसी के प्रति उत्तरदायी थे। डायट द्वारा कैबिनेट का प्रस्ताव अस्वीकृत होने पर मत्रियो को त्याग-पत्र नही देना पडता था।

दूसरे, ससदीय शासन के अनुसार सम्राट जो जापानी राष्ट्र का अध्यक्ष है, केवल नाम मात्र का प्रशासक है। जिस प्रकार इग्लैंड के सम्राट तथा भारत के राष्ट्रपति के हाथ मे यथार्थत कोई शक्ति नही है ठीक उसी प्रकार उसके लिए भी कोई शक्ति नहीं दी गई है।

जापानी सविधान निर्माता सयुक्त राष्ट्र अमेरिका के निवासी थे जहां पर बहुत समय से अध्यक्षात्मक शासन की व्यवस्था है, परन्तु फिर भी उन्होंने जापान मे इस प्रकार की शासन व्यवस्था स्थापित करना उचित नहीं समझा। इसका कारण यह था कि जापान मे सम्राट के होते हुए राष्ट्रपति का निर्वाचन नहीं हो सकता था। यदि सम्राट को ही वहाँ का राष्ट्रपति पद दिया जाता तो पूर्वगामी सम्राट तथा उसकी शक्तियो में कोई विशेष अन्तर नही रहता।

९ लोकतात्रिक सविधान—जापान मे जिस प्रकार के प्रशासन की व्यवस्था की गई है, वह सर्वथा लोकतात्रिक है, जिससे अभिप्राय है कि सार्वभौम सत्ता जनता मे निवास करती है, सभी शक्तियाँ जनता से प्राप्त होती हैं और जनता ही सम्पूर्ण प्रभुता का स्रोत है।[4] इस सविधान से पूर्व जापान मे लोकतात्रिक व्यवस्था नही थी, क्योकि समस्त शक्तियाँ सम्राट मे निहित थी और वही उनका प्रयोग-कर्ता था, किन्तु नूतन सविधान ने इग्लैंड के सविधान की भांति जापानी सम्राट के पद को पूर्णरूपेण औपचारिक बना दिया है। उसकी शक्तियाँ प्रजा को हस्तान्तरित करदी गई हैं और वही उन शक्तियो का प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रीति से प्रयोग करती है। इस प्रकार राजतन्त्र के स्थान पर जापान मे लोकतन्त्रात्मक प्रशासन की व्यवस्था की गई है। लोकतन्त्रात्मक प्रशासन की आधार शिला स्वतन्त्रता, समानता और न्याय आदि के उच्च आदर्श होते हैं, जिन्हें जापानी प्रजाजनो ने प्रस्तावना तथा मूल अधिकारो के अन्तर्गत भली प्रकार स्वीकार तथा उद्घोषित किया है।

3. Article 69.

4. Articl 1

इस सविधान को पूर्णरूपेण प्रजातान्त्रिक बनाने की दृष्टि से, इसमे कुछ ऐसे भी तत्वो का समावेश किया गया है जो अन्य प्रजात त्रिक देशो मे नही पाए जाते। उदाहरणस्वरूप—इ ग्लैंड के सम्राट के पास प्रशासन सम्बन्धी समस्त अधिकार आज तक सुरक्षित हैं। यह बात दूसरी है कि वह उनका परम्परावश प्रयोग नही करता, किन्तु जापान मे सम्राट को उसकी पूर्वगामी सभी शक्तियो से वन्चित कर दिया गया है । उसकी शक्तियाँ जनता के प्रतिनिधियो के हाथ मे हैं वह तो केवल "राज्य और प्रजा के ऐक्य का प्रतिक है और जनता की इच्छा ही उसकी शक्ति का स्रोत है।" वस्तुत वह केवल नाम-मात्र का प्रशासक है, जैसा कि एक प्रजातान्त्रिक देश के सर्वोच्च प्रशासक को होना चाहिए । शक्तियो के छिन जाने पर अब उसके पद तथा व्यक्तित्व से किसी प्रकार का भय नही रह जाता।

दूसरे, प्रजातान्त्रिक देशो मे ससद के उच्च और निम्न सदनो मे से निम्न सदन मे जनता की सर्वोच्च शक्ति निहित की जाती है और उसी के प्रति सरकार भी उत्तरदायी होती है। उच्च सदन को निम्न सदन की तुलना मे न तो शक्तियाँ ही प्राप्त होती हैं और न महत्व ही। जापनी सविधान ने भी इस सिद्धान्त का सर्वथा अनुसरण किया है और फिर रचना की दृष्टि से भी उच्च सदन को पहले की अपेक्षा अधिक जनतन्त्रात्मक बना दिया है।

तीसरे, जापानी प्रजाजनो को दिए गए अधिकारो ने इस सविधान के प्रजातान्त्रिक स्वरूप का और भी अधिक समर्थन एव स्पष्टिकरण किया है । नवीन सविधान ने नागरिको को वे सभी अधिकार दिए है जो एक पूर्ण विकसित प्रजातान्त्रिक देश के नागरिको को मिलने चाहिए। इन अधिकारो के अन्तर्गत काम पाने का भी अधिकार दिया गया है, जिसे भारत जैसा प्रगतिशील देश आज तक नही दे पाया है, फिर इन अधिकारो को अनुल्लघनीय घोषित किया गया है।

उपर्युक्त दृष्टि से जापानी सविधान भारतीय सविधान की अपेक्षा प्रजातान्त्रिक भावनाओ का कहीं अधिक पोषक है। जापानी सविधान का लोकतन्त्रीय स्वरूप सिद्ध करने के लिए सबसे अधिक सबल प्रमाण यह है कि उसने युद्ध करना सदैव के लिए वर्जित घोषित किया है । फलस्वरूप यहाँ की सरकार शोषण की वृत्ति का परित्याग कर लोक कल्याणकारी नीति का अनुसरण करने लगी है और जनता से प्राप्त धन, जो कभी युद्ध तथा युद्ध के साधनो पर व्यय किया जाता था, अब जन-जीवन को सुखी एव समृद्धशाली बनाने मे व्यय किया जाता है।

निष्कर्षत नवीन सविधान ने जापान को पूर्णरूपेण प्रजातान्त्रिक बना दिया है।

१० युद्ध का परित्याग—जापानी सविधान की उल्लेखनीय विशेषता उसका युद्ध-परित्याग पर विशेष बल देना है। यह उच्चादर्श विश्व के अन्य सवि-धानो मे देखने को भी नही मिलता। जापान को छोड़कर, विश्व मे कोई ऐसा नही है, जिसने युद्ध करने को सदैव के लिए ही परित्याग कर दिया हो।

बुद्ध और गाधी का देश भारत सदैव से ही अहिंसावादी रहा है और आज भी विश्व शांति का प्रबल समर्थक है, किन्तु युद्ध करने के अधिकार का उसने कभी भी परित्याग नहीं किया। जापानियो म युद्ध त्याग की भावना का आना नितान्त स्वाभाविक ही है। क्योकि द्वितीय विश्व युद्ध के हृदय विदारक एव रोमाचकारी विध्वस को वहाँ की जनता कभी विस्मृत नहीं कर सकती। ऐसा कौन-सा जापानी होगा जो नागासाकी और हिरोशिमा के प्रलयकारी विध्वस को सरलता से भुला देगा ? यही कारण है कि सविधान की प्रस्तावना मे युद्ध-परित्याग के उच्चादर्श का समावेश किया गया है और फिर धारा ९ मे इसकी पुनरावृत्ति करते हुए लिखा है, "न्याय तथा व्यवस्था पर अवलम्बित अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति की शुद्ध हृदय से आकाक्षा रखते हुए जापान की जनता युद्ध का राष्ट्र के सर्वोच्च अधिकार के रूप मे तथा अन्तर्राष्ट्रीय विवादो का निर्णय करने के लिए बल तथा धमकी को सदैव के लिए परित्याग करती है। इस उद्देश्य को प्राप्त करने की दृष्टि से स्थल, जल तथा वायु सेनाओ एव युद्ध के अन्य साधनो को कभी न रखा जावेगा। राज्य के युद्ध करने के अधिकार को मान्यता नही दी जावेगी।"

साराशत जापान की विदेश नीति विश्व शांति का समर्थन तथा मानव-जाति का कल्याण करना है। जापान की इस सुन्दर कामना एव उच्च लक्ष्य का विश्व के सभी व्यक्तियो ने हृदय से अभिनन्दन किया है, किन्तु वास्तविक स्थिति इसके विपरीत है। आलोचको का मत है कि अधिकाश जापानी युद्ध प्रिय होने के नाते युद्ध का समर्थन करते हैं और सेना का सगठन करना चाहते हैं।

११ धर्म-निर्पेक्ष राज्य—धार्मिक दृष्टि से राज्य के दो भेद किए जाते हैं—धर्माचारी (Theocratic State) और धर्म निर्पेक्ष राज्य (Secular State)। धर्माचारी राज्य मे किसी धर्म विशेष को राज्य-धर्म स्वीकार किया जाता है और उसी को प्रधानता दी जाती है। नवीन सविधान से पूर्व जापान एक ऐसा ही राज्य था, क्योकि द्वितीय विश्व-युद्ध के समय वहां 'शिण्टो-धर्म' राज्य-धर्म के रूप मे माना जाता था और शासन की ओर से उसे पूर्ण प्रोत्साहन दिया जाता था। इस धर्म मे प्रशासनिक तथा धार्मिक क्षेत्र मे कोई विभेद नहीं किया जाता और प्रशासन के सर्वोच्च अधिकारी सम्राट को ही धर्म का अध्यक्ष माना जाता था, किन्तु नूतन सविधान ने जापान मे भारत की भाति धर्म-निर्पेक्ष नीति का अनुसरण किया है। अब जापानी सरकार का अपना कोई विशेष धर्म नही है। वस्तुत सरकार की दृष्टि मे सभी धर्म समान हैं।" राज्य न तो किसी विशेष धर्म के पालन पर आग्रह करता है और न उसके कार्यों मे भाग लेन के लिए अपने नागरिको को प्रोत्साहित करता है। वस्तुत जापान एक धर्म निर्पेक्ष राज्य है।

१२ स्वतन्त्र एव निष्पक्ष न्यायपालिका—सयुक्त राज्य अमेरिका की भाति

जापान के नूतन संविधान में शक्ति-विभाजन के सिद्धान्त का अनुसरण किया गया है, क्योंकि जब तक न्यायिक शक्ति को प्रशासनिक विभाग से स्वतन्त्र नहीं रखा जाता, तब तक नागरिकों के स्वातन्त्र्य अधिकार की रक्षा नहीं हो पाती, और यदि उसको प्रशासन के क्षेत्र से बिल्कुल ही हटा दिया जावे तो शासन एक दम ग्रस्त व्यस्त और बिना सूर्य वाले सौर्य मण्डल के समान रह जाता है।

शक्ति-विभाजन का सिद्धान्त पूर्वगामी संविधान के अन्तर्गत नहीं अपनाया गया था, उस संविधान में न्यायपालिका स्वतन्त्र न थी, प्रत्युत कार्य पालिका का एक अंग थी। आजकल न्यायपालिका की स्वतन्त्रता को विशेष रूप से मान्यता दी गई है। न्यायाधीश कार्यपालिका में स्वतन्त्र रखे गए हैं। उनकी नियुक्ति अवश्य कैबिनेट द्वारा की जाती है, किन्तु अवकाश प्राप्ति तक वे पूर्ण रूपेण स्वतन्त्र एवं सुरक्षित रहते हैं। कार्यपालिका अथवा डायट को यह अधिकार प्राप्त नहीं कि वे उनके विरुद्ध कोई अनुशासनात्मक कार्यवाही कर सकें। न्यायाधीशों के वेतन तथा भत्ते भी इतने आकर्षक रखे गए हैं कि उन्हें जनता द्वारा किसी प्रकार का प्रलोभन भी नहीं दिया जा सकता। फलस्वरूप यहाँ के न्यायाधीश निर्भय होकर ईमानदारी से अपना कार्य करते हैं।

यहाँ के न्यायपालिका की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि न्यायाधीशों की नियुक्ति पर सामान्य निर्वाचन में जनता द्वारा अनुमोदन प्राप्त करना पड़ता है। दस वर्ष के उपरान्त उनके पदों पर पुनः अनुसमर्थन प्राप्त करना भी अनिवार्य है। यदि निर्वाचन में उनको अनुमोदन तथा अनुमर्थन प्राप्त न हो तो उन्हें उनके पद से पृथक कर दिया जाता है।

भारत की भांति जापान में न्यायिक पुनरीक्षण की व्यवस्था है और न्यायिक शक्ति सर्वोच्च न्यायालय में निहित है। सर्वोच्च न्यायालय को स्वयं नियम बनाने के अधिकार प्राप्त हैं। धारा ८१ उपबन्धित करती है कि "सर्वोच्च न्यायालय अन्तिम न्यायालय है। उसे किसी कानून, आदेश, विनियम अथवा सरकारी कार्य की सवैधानिकता को विनिश्चित करने की शक्ति है।"

जापान की शासन-पद्धति के अध्ययन का महत्व—राजनीति विज्ञान के विद्यार्थियों को जापानी शासन व्यवस्था का अनुशीलन करना नितान्त आवश्यक है। इस व्यवस्था के महत्व का वर्णन निम्न शीर्षकों के अन्तर्गत किया जा सकता है —

१. संसदात्मक शासन-पद्धति का जनक—जिस प्रकार योरुप में संसदात्मक शासन-पद्धति का विकास सर्व प्रथम ब्रिटेन में हुआ, उसी भांति एशिया में उसका प्रचलन जापान से प्रारम्भ होता है। इस पद्धति की स्थापना सन् १८९० में हुई, जैसा कि जी० एम० काहिन के शब्दों से स्पष्ट होता है, "समस्त एशिया में यह

जापान है जो संसदीय शासन का सब से अधिक प्राचीन इतिहास रखता है। साम्राज्यीय डाइट की स्थापना १८९० में हुई थी।"[5] अतः जापान को एशिया महाद्वीप में संसदीय शासन-व्यवस्था का जनक कहना अधिक उपयुक्त होगा। इस देश में इंग्लैंड की भांति राज-तन्त्र है और सम्राट को ही राज्य का सर्वोच्च अधिकारी घोषित किया गया है, किन्तु राजतन्त्र होते हुए भी, दोनों देशों में पूर्णतः जनता का शासन है।[6] इस दृष्टि से यह दोनों ही देश 'मुकटधारी गणतन्त्र' (Crowned Republic) कहलाते हैं, किन्तु इसका यह अभिप्राय नहीं कि सत्ता छिन जाने से सम्राटों के सम्मान में किसी प्रकार का कोई अन्तर आया है। जनता के हृदय में दोनों सम्राटों के प्रति आज भी वैसा ही आदर और सम्मान है, जो पहले था। जापानी शासन व्यवस्था को देखकर एशिया के अन्य देशों ने भी संसदीय शासन प्रणाली प्रारम्भ की, किन्तु कुछ ही समय के अनन्तर अधिकांश देशों में उसका स्वरूप विकृत हो गया और उसका स्थान अधिनायकवाद ने ले लिया, जब कि जापान में आज भी वही शासन व्यवस्था है जो ७७ वर्ष पूर्व स्थापित हुई थी। वर्तमान समय में समस्त एशिया महाद्वीप में जापान ही एक ऐसा देश है, जहां पूर्ण प्रजातन्त्र और वैधानिक राजतन्त्र का समन्वय पाया जाता है।

२. पूर्व और पश्चिम की विभिन्न विचार धाराओं का समन्वयकारी.—अपनी भौगोलिक स्थिति के कारण, जापान बहुत दिनों तक विश्व के अन्य देशों से बिल्कुल प्रथक रहा। उसका इतिहास बतलाता है कि द्वितीय विश्व युद्ध के प्रारम्भ होने के बहुत दिन पहले तक उसकी सभ्यता, संस्कृति और प्रशासनीय पद्धतियाँ अन्य देशों से पूर्णतया भिन्न थीं, क्योंकि उन पर पाश्चात्य देशों की सभ्यता का कोई प्रभाव न था। जैसे-जैसे जापानी विदेशियों के सम्पर्क में आने लगे, वैसे-वैसे वे उन देशों की मान्यताओं की ओर उन्मुख होने लगे। फलस्वरूप जापानी न्याय-व्यवस्था तथा स्थानीय प्रशासन, जो बहुत समय तक स्वदेशी रहा था, फ्रान्सीसी और जर्मन विचारधाराओं से प्रभावित हो गया। इसी प्रकार वहां के संसदीय एवं प्रशासनिक ढांचे पर भी इंग्लैण्ड की परम्पराओं का स्थाई प्रभाव पड़ा। द्वितीय विश्व युद्ध के समय, जापान नागासाकी और हीरोशिमा का विध्वंस देखकर संयुक्त-राष्ट्र अमेरिका के सामने घुटने टेक गया और मित्रराष्ट्रों ने उस पर अपना अधिकार

---

5. Japan has the longest history of parliamentary government in all of Asia. The Imperial Diet was created in 1890... "

6. The Emperor shall be the symbol of the state and of the unity of the people, deriving his position from the will of the people with whom resides sovereign power.

स्थापित कर लिया। कुछ समय पश्चात् अमेरिका राजनीतिज्ञों के निर्देशन में एक नवीन संविधान निर्मित किया गया, जिसमें पाश्चात्य मान्यताओं का पूर्ण समावेश था–इनमें विशेष कर नागरिकों के मूल-अधिकार तथा न्याय-पद्धति आते हैं।

अधिकांश समीक्षकों का मत था कि पाश्चात्य-पद्धति पर निर्मित संविधान, सुदूर पूर्व में स्थित जापान जैसे देश के लिए सर्वथा प्रतिकूल सिद्ध होगा। उनका कहना था कि जिस प्रकार पश्चिमी पौधे अथवा जीव-जन्तु, पूर्व की जलवायु में जीवित नहीं रह सकते, ठीक उसी प्रकार पाश्चात्य-पद्धति पूर्व में चल ही नहीं सकती, किन्तु समीक्षकों का यह मत नितान्त भ्रमपूर्ण एवं असत्य निकला, क्योंकि जापानियों ने इस नूतन संविधान को न केवल स्वीकार ही किया, अपितु आत्मसात भी। यह संविधान आज तक जापानी जन-जीवन के सर्वथा अनुकूल सिद्ध हो रहा है।

पाश्चात्य देशों की भांति, जापान पर अपने पड़ौसी राज्य चीन तथा सोवियत संघ की साम्यवादी विचारधारा का भी बड़ा व्यापक प्रभाव पड़ा। इस प्रकार जापानी जनता पर दो विपरीत विचार धाराएँ समान रूप से प्रभाव डालने लगीं। जापान निवासी जहाँ पूँजीवादी देशों की ओर उन्मुख हुए वहाँ साम्यवादी देशों की ओर भी। एक ओर जहाँ जापानी संयुक्त-राष्ट्र अमेरिका द्वारा दी गई सहायता के कारण, उनके प्रति बड़ा आभार प्रदर्शित करते थे, वहाँ दूसरी ओर अमेरिका द्वारा की गई संधि के फलस्वरूप, वे जापान को पूर्णरूपेण स्वतन्त्र मानने के लिए किसी प्रकार भी तैयार न थे। वस्तुतः दो विभिन्न विचारधाराओं का समन्वय कर देश का प्रशासन चलाना, कोई कम आश्चर्यक एवं रोचक बात नहीं है।

३. औद्योगिक प्रगति के साथ-साथ सैनिक शक्ति का विकास करना—यद्यपि जापान एशिया महाद्वीप के अन्तर्गत एक छोटा-सा देश है किन्तु औद्योगिक प्रगति की दृष्टि से यह एशिया के सभी देशों में अग्रणी है। उसने १९ वीं शताब्दी के अन्तिम दशाब्द में प्रगति करना प्रारम्भ किया और बहुत थोड़े दिनों में वह एक महान औद्योगिक, व्यापारिक देश बन गया। इतनी अल्प अवधि में सम्भवतः विश्व के किसी अन्य देश ने इतनी आश्चर्यजनक प्रगति नहीं की, जितनी कि जापान ने की है। अपनी उत्तरोत्तर प्रगति के कारण ही आज उसकी गणना विश्व के महान व्यापारिक देशों में होने लगी है। इस सदर्भ में सबसे अधिक आश्चर्यजनक बात यह है कि जापान ने औद्योगिक प्रगति के साथ-साथ सैन्य शक्ति के क्षेत्र में भी आशातीत विकास किया है। सैनिक दृष्टि से यह इतना अधिक शक्तिशाली बन गया, कि सन् १९०५ में सोवियत संघ जैसे विशाल देश को भी परास्त कर दिया। तदनन्तर चीन जैसे नवोन्नत जनवादी राष्ट्र से संघर्ष आमन्त्रित करने में किंचित् मात्र भी न हिचकिचाया। इतना ही नहीं, थोड़े ही समय पश्चात्, सैन्य शक्ति के कुछ और अधिक

सुदृढ एव प्रबल हो जाने पर वह इ ग्लैण्ड और जर्मनी की भाति विशाल साम्राज्य स्थापित करने का स्वप्न देखने लगा।

इस प्रकार एक छोटे से देश को दो विभिन्न क्षेत्रो मे विकास करते देख, अन्य विकासोन्मुख देशो का उससे ईर्ष्या करना सर्वथा स्वाभाविक ही है। इस कारण जापानी सविधान का अध्ययन करना अपरिहार्य हो गया है।

४ अभिनव मान्यताएँ—जापानी सविधान कुछ ऐसी नूतन व्यवस्थाओ पर आधारित है, जो दर्शक एव पाठको मे बडी जिज्ञासा उत्पन्न करती हैं। उदाहरण स्वरूप, नवीन सविधान के अनुसार, जापान मे उत्तरदायी शासन की व्यवस्था की गई है, किन्तु यह अनिवार्य नही रखा गया कि सभी मन्त्री ससद के निर्वाचित सदस्यो मे से ही लिए जावेगे। सविधान के अनुसार केवल कम से कम आधे सदस्य ससद-सदस्यो मे से होने चाहिएँ, परन्तु ससदीय प्रथानुसार मन्त्री-परिषद के सभी सदस्य ससद मे से लिए जाते हैं, और यदि कोई मन्त्रीससद के बाहर से लिया भी जाता है तो उसे छः मास के अन्दर-अन्दर, ससद का सदस्य निर्वाचित होना पडता है। विश्व के अन्य ससदीय देशो मे इसी प्रकार की व्यवस्था है।

दूसरे, यद्यपि जापान एक राजतन्त्रात्मक देश है और अपने सम्राट को प्रशासन का सर्वोच्च अधिकारी स्वीकार करता है, किन्तु सैद्धान्तिक दृष्टि से वहाँ के सविधान ने सम्राट के सभी अधिकार उससे छीन लिए हैं। अब वह एक नाम मात्र का प्रशासक रह गया है, यहा तक कि यदि डाइट मे कभी किसी दल का स्पष्ट बहुमत न हो तो वह स्वविवेक से किसी सदस्य को प्रधान-मन्त्री नियुक्त नहीं कर सकता, जब कि इ गलैण्ड की प्रथा इसके सर्वथा भिन्न है। इस प्रकार की स्थिति उत्पन्न होने पर, वहा सम्राट स्वविवेक से प्रधानमन्त्री नियुक्त करता है।

तीसरे, सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीश के पदो पर, उनकी नियुक्ति के अनन्तर, जनता द्वारा मत लिए जाते हैं। यदि सामान्य निर्वाचन मे उन्हें जनता का समर्थन प्राप्त न हो, तो फिर उनको उनके पदो से पृथक कर दिया जाता है। इतना ही नही, प्रथम निर्वाचन के प्रत्येक दस वर्ष के उपरान्त, प्रजा से जन-निर्देशन द्वारा पुन पुष्टीकरण कराया जाता है। इस समय भी यदि जनमत किसी न्यायाधीश के पक्ष मे न हो, तो उसे पदच्युत कर दिया जाता है। अन्य प्रजातान्त्रिक देशो मे इस प्रकार की कोई व्यवस्था नही है।

चौथे, जापानी ससद का उच्च सदन, निम्न सदन की भाति प्रत्यक्ष रीति से जनता द्वारा निर्वाचित किया जाता है, किन्तु उसको निम्न सदन की तरह अधिकार नही दिए गए। वस्तुत वह इ गलैण्ड के लार्ड सदन की भाति एक शक्ति हीन तथा पुनर्विचारात्मक (Revising) सदन है।

उपर्युक्त बातें जापानी संविधान के अध्ययन के लिए विशेष उत्सुकता उत्पन्न करती हैं।

भारतीय विद्यार्थियों के लिए जापानी शासन-पद्धति के अध्ययन का महत्व—1 अति प्राचीन काल से जापान और भारत के सम्बन्ध बड़े मधुर रहे हैं और आज भी वहां के अधिकांश निवासी बौद्ध-धर्म के कट्टर अनुयायी हैं। भारत मे जन्म लेने वाला बौद्ध-धर्म चीन और कोरिया होता हुआ जब जापान पहुंचा तब वहाँ की जनता ने उसका बड़ा भव्य स्वागत किया और लाखो नर-नारियो ने उसके सिद्धान्तो को हृदयगम कर, उसके प्रति अपनी आस्था प्रकट की। उसी समय से वे भारत को अपना तीर्थ स्थान मानने लगे हैं।

2 दोनो देशो के सामने एक ही जटिल एव गम्भीर समस्या है—वह यह कि दोनो ही जगह जन सख्या की निरन्तर वृद्धि हो रही है, जबकि उर्वरा भूमि की उसके अनुरूप कमी है। यद्यपि जापान भारत की अपेक्षा बहुत ही छोटा देश है, परन्तु फिर भी सघन-कृषि द्वारा (Extensive Farming) उसने इस समस्या पर विजय प्राप्त करली है, जबकि भारत खाद्यान्नो की कमी के कारण, आज तक परमुखापेक्षी बना हुआ है। अत इस दिशा मे भारतीयो को जापानियों से शिक्षा लेकर यथासम्भव उनकी अनुकृति भी करनी चाहिए।

3 भारतीय विद्यार्थियो के लिए जापानी शासन-पद्धति का अनुशीलन करना इसलिए भी महत्वपूर्ण है कि दोनो ही देश अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र मे शान्ति सहयोग और न्याय के उच्चादर्शों का समर्थन करते हैं। दोनों का ही लक्ष्य विभिन्न राष्ट्रो के बीच उत्पन्न होने वाले सघर्षों को शान्तिपूर्ण ढग से सुलझाना है, किन्तु इस प्रकार का भारतीय दृष्टिकोण अति प्राचीन है, जबकि जापानी सर्वथा अर्वाचीन। भारत अनादि काल से 'वसुधैव कुटुम्बकम्' तथा "अहिंसा परमोधम " के सिद्धान्तो का समर्थक तथा प्रचारक रहा है, किन्तु जापानियो ने द्वितीय विश्वयुद्ध मे सैनिकवाद तथा अणुबम के विध्वसकारी हृदयविदारक दृश्यो को स्वय अपनी आँखो से देखकर ही युद्ध के सार्वभौम अधिकारो का सदैव के लिए परित्याग किया है। भारतीयो ने भी इस प्रकार का प्रावधान नीति निर्देशक तत्वो के अन्तर्गत किया है, किन्तु वह केवल उल्लेख मात्र ही है। वे उसको उस प्रकार का मूर्त रूप नहीं दे सके हैं, जिस प्रकार जापानियों ने दिया है। अत भारतीय नागरिको का यह पावन कर्तव्य है कि वे जापानियो की भाति राष्ट्र पिता महात्मा गाधी के इस अहिंसा वादी सिद्धान्त को क्रियान्वित रूप दें।

4. भारत और जापान दोनो ही प्रजातान्त्रिक देश हैं और दोनो ही देशों मे उत्तरदायी शासन की व्यवस्था है, किन्तु यह बड़े आश्चर्य की बात है कि भारतीयो को अपनी शासन व्यवस्था में उतनी सफलता प्राप्त नहीं हो सकी है, जितनी

कि जापानियों की। अतः भारतीय नागरिकों को चाहिए कि वे जापानी शासन व्यवस्था का भली भांति अध्ययन कर अपनी व्यवस्था मे पाई जाने वाली त्रुटियों को दूर करें।

५ आधुनिक प्रजातान्त्रिक संविधानों की भांति जापनी संविधान ने भी अपने नागरिकों को मूल अधिकार प्रदान किए हैं, किन्तु इन अधिकारों की यह विशेषता है कि प्रथमतः वे अन्य देशों मे दिए गए अधिकारों की तुलना मे कहीं अधिक हैं दूसरे, उनमे नागरिकों को काम पाने का भी अधिकार दिया गया है, जो भारतीयों को प्रदान नहीं किया गया। इतना अवश्य है कि उसका उल्लेख नीति निर्देशक तत्वों के अन्तर्गत पाया जाता है। तीसरे, जापानी संविधान मे नागरिकों के अधिकारों के साथ-साथ, उनके कर्त्तव्य भी गिनाए गए हैं जो भारतीय संविधान मे देखने को भी नहीं मिलते। इस दृष्टि से जापानी संविधान की भारतीय संविधान तुलना में कहीं अधिक श्रेष्ठ है।

उपर्युक्त कारणों से भारतीय विद्यार्थियों को जापानी संविधान का अनुशीलन करना नितान्त आवश्यक हो गया है।

4.

नागरिकों के मौलिक अधिकार तथा उनके कर्तव्य

Fundamental Rights of the People & Their Duties

मौलिक अधिकारों का अर्थ—मानव जीवन का चरम लक्ष्य सर्वाङ्गीण विकास करना है, जिसके लिए उपयुक्त एवन् शांतिपूर्ण वातावरण का होना नितान्त आवश्यक है। शांतिपूर्ण वातावरण से अभिप्राय है कि व्यक्ति के ऊपर केवल एक मर्यादित क्षेत्र मे ही समाज और सरकार का नियन्त्रण हो, जिससे वह अपने जीवन को सुखी एव सुन्दर बनाने मे अबाध गति से उत्तरोत्तर बढता रहे। दूसरे शब्दो मे, वह अपने भाग्य का स्वय निर्माता हो और उसके इस महत्वपूर्ण कार्य मे सरकार की ओर से कोई अनुचित नियन्त्रण न हो। लास्की (Laski) का कहना है कि "अधिकार सामाजिक जीवन की उन दशाओ को कहते हैं जिनके बिना मनुष्य पूर्ण विकास नही कर सकता।" मानव विकास की दृष्टि से जिन अधिकारो को परमावश्यक माना गया है, उन्हे मौलिक अधिकार कहते हैं। इन अधिकारो मे निम्न तत्वो का होना नितान्त आवश्यक है —

१—उनका मानव की मूल आवश्यकताओ की पूर्ति का साधन होना।

२—उनका देश के सविधान मे उल्लेख होना।

३—उनको राज्य के सर्वोच्च न्यायालय का सरक्षण प्राप्त होना, जिससे राज्य के विरोध करने पर भी वे स्थिर बने रहें।

आधुनिक प्रजातांत्रिक शासन पद्धति मे मौलिक अधिकारो को जीवन का अभिन्न अङ्ग मानते हुए विशेष महत्व दिया गया है। उनको व्यवहारिक रूप देने का श्रेय सर्वप्रथम फ्रास की प्रथम राज्यक्रान्ति (१७८९) के नेताओं को है। तदुपरान्त अमेरिका निवासियो ने उन पर विशेष प्रकाश डाला और विश्व के सम्मुख एक आदर्श उपस्थित किया। अमेरिका के सविधान के अनन्तर जितने भी अन्य प्रजातात्रिक सविधानो की आज तक रचना हुई है, उनमे से अधिकांश ने उनका विस्तृत वर्णन किया है। जापान का नूतन सविधान भी ऐसे ही नवीन सविधानों मे से है, जिसमे वहाँ के नागरिको के मौलिक अधिकारो का विशद एव विस्तृत वर्णन किया गया

है। इस संविधान के अनुसार जापान निवासियों को वे सभी अधिकार प्राप्त हैं जो एक सभ्य एवं विकासोन्मुख प्रजातांत्रिक देश के नागरिकों को प्राप्त होने चाहिएँ। इन अधिकारों का उल्लेख संविधान के तीसरे अध्याय में ३० धाराओं में किया गया है। वे इस प्रकार हैं—

१—समता का अधिकार,
२—स्वातन्त्र्य अधिकार,
३—धार्मिक स्वतन्त्रता का अधिकार,
४—सम्पत्ति का अधिकार,
५—शिक्षा का अधिकार,
६—शोषण के विरुद्ध अधिकार,
७—भौतिक कल्याण और सामाजिक सुरक्षा प्राप्त करने का अधिकार,

१. समता का अधिकार—भारत के संविधान की भांति जापान के संविधान ने भी जापान के नागरिकों को समता का अधिकार प्रदान किया है। समता के अधिकार से तात्पर्य है कि जापान के सभी नागरिक सम हैं। इस सदर्भ मे धारा १४ उद्घोषित करती है कि 'जापान के नागरिक विधि के अधीन समान हैं और धर्म, जाति, लिङ्ग, सामाजिक स्तर अथवा वंश परम्परा के आधार पर उनके राजनैतिक, आर्थिक अथवा सामाजिक सम्बन्धों मे किसी प्रकार का विभेद नहीं किया जावेगा।'[1] इस धारा के अनुसार नवीन संविधान ने सभी नागरिकों को कानून के समक्ष समानता का अधिकार दिया है और लिङ्ग, धर्म अथवा सामाजिक स्तर के कारण उनमे किसी प्रकार का विभेद नहीं रखा है। भारतीय संविधान ने भी देश के सभी नागरिकों को कानून के समक्ष समान बतलाया है और कानून सबकी समान रूप से रक्षा करता है। जिस प्रकार जापान मे धर्म, लिङ्ग, जाति या सामाजिक स्तर के कारण व्यक्तियों में कानून के समक्ष विभेद नहीं किया जाता, ठीक उसी प्रकार भारत में भी। इस दृष्टि से दोनों देशों के संविधानों में समानता के अधिकार में पर्याप्त साम्य है।

'पीअर' प्राचीन समय में जापान में इङ्गलैंड की भांति विशिष्ट जनों को (Peer) की उपाधि से अलंकृत किया जाता था। ये पीअर (Peer) सरदार परिषद (House of Peers) के सदस्य होते थे और संसद (Diet) के अधिकारों का निम्न सदन के सदस्यों की भांति उपयोग करते थे, किन्तु नवीन संविधान के

1 "All of the people are equal under the law and there shall be no discrimination in political, economic or social relations because of race, creed, sex, social status or family origin"   [Article 14]

धारा १६ के अनुसार "प्रत्येक व्यक्ति को क्षति पूर्ति के लिए, सार्वजनिक अधिकारियों के अपदस्थ करने के लिए विधि निर्माण के लिए, विधियों, अध्यादेशों, विनियमों के निर्माण, अप्रचलन अथवा संशोधन के लिए तथा अन्य विषयों के लिए शान्तिपूर्वक प्रार्थना पत्र देने का अधिकार है। इस प्रकार की गई याचना के लिए किसी भी नागरिक को सरकार द्वारा कष्ट नहीं दिया जावेगा।

इस प्रकार के अधिकार के देने का तात्पर्य यह है कि राज्य कर्मचारी शासन संचालन में जनता की इच्छाओं की अवहेलना न करें, प्रत्युत सदैव सजग व सचेत रहें। धारा १७ उपबन्धित करती है कि 'यदि किसी नागरिक को किसी सार्वजनिक अधिकारी द्वारा अवैध रूप से तंग किया गया हो अथवा उसको हानि पहुंचाई गई हो तो वह कानून के अनुसार राज्य अथवा सार्वजनिक संस्था से उस हानि के पूरे करने के लिए प्रार्थना कर सकता है। धारा १९ के अनुसार जापानी नागरिकों को यह अधिकार दिया गया है कि उनके अन्त करण एवं चिन्तन की स्वतन्त्रता को भंग नहीं किया जावेगा। धारा २१ जापानी नागरिकों को अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता प्रदान करती है और यह उपबंधित करती है कि सभा, संगठन, भाषण, मुद्रण तथा अन्य प्रकार के अभिव्यक्ति करणों की स्वतंत्रता की प्रत्याभूति है। उनके अभिव्यक्तिकरण पर किसी प्रकार के विवाचन (Censor) की व्यवस्था नहीं की जावेगी और संवादों की गोपनीयता को भंग नहीं किया जावेगा।" इस प्रकार की स्वतन्त्रता भारतीय संविधान ने भी यहां के नागरिकों को दी है। संविधान के १९वे अनुच्छेद की प्रथम धारा उपबंधित करती है कि नागरिकों को भाषण देने और विचार प्रकट करने की स्वतन्त्रता होगी।

इससे यह स्पष्ट है कि जापानी प्रजाजनों को अपने विचारों और मान्यताओं को मौखिक रूप से, लिखकर या छापकर चित्र द्वारा या अन्य किसी प्रकार से सभा एवं संगठनों में अभिव्यक्त करने की स्वतन्त्रता है। प्रेस की स्वतन्त्रता तथा प्रकाशन का अधिकार भी इसी स्वतन्त्रता के अन्तर्गत आता है। ज्ञान का प्रचार और प्रसार भी इसी स्वतन्त्रता पर अवलम्बित है। वास्तव में वाकस्वातन्त्र्य और अभिव्यक्ति की स्वतन्त्रता जनता का एक प्रमुख अधिकार होता है क्योंकि जनतन्त्र शासन की सफलता जनमत पर आधारित होती है और जनमत के लिए विचारों की अभिव्यक्ति की स्वतन्त्रता अपेक्षित है। इस प्रकार की स्वतंत्रता के दोनों पहलू होते हैं—अच्छे भी और बुरे भी। अभिव्यक्ति की स्वतन्त्रता के बिना जहां सरकार की न आलोचना की जा सकती और न उसे जनता के प्रति उत्तरदायी ही ठहराया जा सकता है, वहां कभी-कभी इसके द्वारा सुशासन में अनेक बाधाएं एवं कठिनाइयां भी उत्पन्न कर दी जाती हैं। इसी कारण वाक स्वातन्त्र्य पर प्रतिबंध लगाए जाते हैं। उदाहरण के लिए भारतीय संविधान ने निम्न प्रतिबन्ध लगाए हैं —

१—अपमान लेख

२—अपमान वचन

३—मान हानि

४—न्यायालय अपमान

५—शिष्टाचार पर आघात

६—राज्य की सुरक्षा को निर्बल करना

७—अपराध करने के लिए उत्तेजित करना तथा विदेशी राज्यों से मैत्री आदि।

भारत ही नहीं, अन्य देशों में भी आपातकाल में इस प्रकार की स्वतन्त्रता को स्थगित कर दिया जाता है। जापान में भी इसका कोई अपवाद नहीं देखा जाता।

संविधान की धारा ३१ के अनुसार किसी भी व्यक्ति को उसके जीवन और स्वतन्त्रता से विधि द्वारा स्थापित प्रक्रिया के अतिरिक्त वन्चित नहीं किया जावेगा और न उस पर कोई फौजदारी कार्यवाही की जावेगी।

निष्कर्षतः भारत की भांति जापान में अवैध बन्दीकरण नहीं किया जाता। जिस प्रकार भारत में बन्दीकरण के कारणों से अवगत किए बिना किसी भी व्यक्ति को हवालात में निरुद्ध नहीं किया जाता और न उसकी रुचि के वकील से परामर्श करने तथा बचाव कराने के अधिकार से ही वन्चित किया जाता है, ठीक उसी प्रकार जापान में भी। जापानी संविधान की धारा ३२ बतलाती है कि "किसी भी व्यक्ति को न्यायालय तक पहुंचने के अधिकार से वन्चित नहीं किया जा सकता।' धारा ३३ के अनुसार किसी भी प्रजाजन को तब तक बन्दी नहीं बनाया जा सकता जब तक कि किसी न्यायिक अधिकारी ने उसकी गिरफ्तारी के लिए वारन्ट न निकाला हो और वारन्ट में उस अपराध को स्पष्ट लिख दिया हो जिसके आधार पर उसे बन्दी बनाया जाता है।

धारा ३४ बतलाती है कि बन्दी बनाते ही अविलम्ब उस व्यक्ति को उस पर लगाए गए अपराधों से अवगत कराया जाता है और यथा शीघ्र उसे वकील करने की सुविधा प्रदान की जाती है। जब तक किसी व्यक्ति को बन्दी बनाने के पर्याप्त कारण नहीं होंगे, तब तक उसे बन्दी नहीं बनाया जा सकता।

धारा ३५ के अनुसार सभी नागरिकों के घर के प्रपत्रों तथा सम्पत्ति संबंधी रहस्यों के विरुद्ध सुरक्षित होने का अधिकार प्राप्त है। उनकी तलाशी केवल वारण्ट के जरिए ही की जा सकती है।

धारा ३६ के अनुसार उसे कोई कठोर दण्ड अथवा यातना नहीं दी जावेगी और धारा ३७ के अनुसार फौजदारी मुकदमों में अपराधी को शीघ्रातिशीघ्र सार्वजनिक जांच की सुविधा दी गई है।

निष्कर्षत: जापान मे प्रजाजनो को न तो अवैधरूप से बन्दी ही बनाया जाता है और न कठोर दण्ड ही दिया जाता है, लेकिन इस संविधान मे भारतीय संविधान की बन्दी प्रत्यक्षीकरण धारा के समान कोई धारा नही है। धारा ३८ बतलाती है कि किसी भी प्रजाजन को अपने ही विरुद्ध गवाही देने के लिए बाध्य नही किया जावेगा। किसी व्यवस्था, यातना, धमकी अथवा दीर्घकालीन बन्दीकरण के कारण की गई अपराध स्वीकृति को प्रमाण नही समझा जावेगा। किसी भी व्यक्ति को उन अपराधो मे न तो दोषी ही ठहराया जावेगा और न दण्ड ही दिया जावेगा, जिनमे उसकी स्वीकृति के अतिरिक्त कोई प्रमाण न हो। धारा ३९ उपबन्धित करती है कि किसी भी व्यक्ति को उस काम के लिए दोषी नही ठहराया जावेगा जो उसके करते समय विधि की दृष्टि मे दोष न था अथवा उसको पहले मुक्त कर दिया था। एक दोष के लिए किसी व्यक्ति पर न तो दो बार अभियोग चलाया जावेगा और न दो बार दण्डित ही किया जावेगा। धारा ४० के अनुसार यदि कोई व्यक्ति बन्दी बनाये जाने के अनन्तर मुक्त कर दिया गया हो तो उसको विधि की व्यवस्था के अनुसार राज्य से हानि की पूर्ति के लिए याचना करने का अधिकार होगा।

३ **धार्मिक स्वतन्त्रता का अधिकार**—देश मे रहने वाले सभी व्यक्तियों को अन्त करण एव विचारो की स्वतन्त्रता है तथा धर्म को अबाध रूप से मानने एव आचरण करने का अधिकार दिया गया है। अन्त करण की स्वतन्त्रता से अभिप्राय है कि प्रजाजन अपने धार्मिक विश्वासो एवम् मान्यताओ के सम्बन्ध मे पूर्ण स्वतन्त्रता से तात्पर्य यह है कि वे किसी भी धर्म को मानें तथा उस पर आचरण करें। कोई भी व्यक्ति सस्था या सरकार उन्हें किसी धर्म विशेष को मानने और आचरण करने के लिए बाध्य नही करेगी। इस प्रकार सभी धर्मावलम्बियो को धार्मिक स्वतन्त्रता की प्रत्याभूति दी गई है।

यह भी उपबन्धित किया गया है कि राज्य की दृष्टि मे सभी धर्म समान होगे। वह किसी धर्म विशेष को न तो विशेष अधिकार, सहायता अथवा सुविधा प्रदान करेगा और न किसी व्यक्ति को उसमे रुचि व भाग लेने के लिए प्रोत्साहित एव बाध्य करेगा।

"राज्य और उसके अन्य अवयव धार्मिक शिक्षा और कार्यकलापो से दूर रहेंगे।" वस्तुत जापान भारत की भाँति धर्म निर्पेक्ष राज्य है। वर्तमान समय मे यहाँ पर मुख्यत तीन धर्म पाये जाते हैं —(१) शिन्टोवर्म (२) बौद्धधर्म (३) ईसाई धर्म।

४ **सम्पत्ति का अधिकार**—संविधान की धारा २९ के अनुसार प्रत्येक जापानी नागरिक को सपत्ति के अर्जन तथा धारण का अधिकार दिया गया है। किसी भी व्यक्ति से उसकी सम्पत्ति छीनी नही जा सकती। संविधान बतलाता है

कि "सम्पत्ति के स्वामित्व अथवा ग्रहण करने के अधिकार का अतिक्रमण नहीं किया जावेगा।" यदि सार्वजनिक उपयोग के लिए सरकार सम्पत्ति लेना चाहेगी तो उचित मुआवजा (प्रतिकार) तथा क्षतिपूर्ति देकर ही ले सकेगी। भारतीय संविधान के अनुसार भी सरकार को मुआवजा देकर संपत्ति हस्तगत करने का अधिकार प्राप्त है, किन्तु मुआवजा कितना दिया जावेगा, इस प्रश्न को संसद तय करती है। इसके विपरीत जापान में मुआवजे की राशि के औचित्य को वहां का सर्वोच्च न्यायालय तय करता है।

५. शिक्षा का अधिकार —भारतीय नागरिकों की भांति जापानी नागरिकों को योग्यतानुसार सम शिक्षा प्राप्त करने का अधिकार दिया गया है। वहाँ के प्रजाजनों का यह कर्तव्य बतलाया गया है कि वे स्वयं की देखरेख में अपने बच्चों को विधि द्वारा उपबन्धित शिक्षा दिलावें। ऐसी अनिवार्य शिक्षा निःशुल्क रखी गई है। (धारा २६) वर्तमान समय में यहां पर प्रथम ९ वर्ष तक की शिक्षा अनिवार्य एवं निशुल्क है और पाठ्य विषयों में ''शील', 'संयम'' तथा 'खेल'' के विषय भी सम्मिलित किए गए हैं। शिक्षा का माध्यम जापानी भाषा है। इस क्षेत्र में जापान ने जो प्रगति की है वह एक दम आश्चर्यजनक एवं प्रशंसनीय है, क्योंकि यहाँ पर शिक्षा का प्रसार ९९.९ प्रतिशत है। (धारा २, से २६ तक)

६ शोषण के विरुद्ध अधिकार—इस अधिकार के अन्तर्गत —

(१) नागरिकों से (दण्डित व्यक्तियों को छोड़कर) उनकी इच्छा के विरुद्ध बलपूर्वक लिया हुआ श्रम अपराध माना गया है जो विधि के अनुसार दण्डित होगा।

(२) दासता की प्रथा का अन्त कर दिया गया है। (धारा १८)

(३) बच्चों के शोषण पर प्रतिबन्ध लगा दिया गया है। (धारा २७) यह अधिकार भारतीय 'शोषण के विरुद्ध' अधिकार से बहुत कुछ समानता रखता है।

भारत में भी—

(१) स्त्रियों व बच्चों का क्रय विक्रय तथा बेगार द्वारा लिया गया बलपूर्वक श्रम अपराध माना गया है।

(२) १४ वर्ष से कम आयु वाले बालकों को किसी कारखाने अथवा खान में नौकर नहीं रखा जा सकेगा।

७. भौतिक कल्याण और सामाजिक सुरक्षा प्राप्त करने का अधिकार— जापान का नवीन संविधान लोककल्याणकारी भावना से प्रेरित होकर निर्मित किया गया था। अतः आर्थिक दृष्टि से अवसर की असमानता को दूर कर यह सब व्यक्तियों की साधारण आवश्यकताओं की पूर्ति की व्यवस्था करता है। धारा २७ में स्पष्ट किया गया है कि प्रजाजनों को काम करने का अधिकार होगा। इस धारा

के अनुसार "सभी व्यक्तियों को काम प्राप्त करने का अधिकार है। यह उनका कर्तव्य होगा कि वे काम करें। वेतन, कार्य के घण्टों, आराम की आवश्यकताएँ तथा कार्य सम्बन्धी दशाओं के स्तरों को विधि द्वारा निश्चित किया जावेगा। बच्चों का शोषण नहीं होगा।"

इस धारा के शब्दों पर ध्यान देने से स्पष्ट होता है कि राज्य का यह उत्तरदायित्व है कि वह अपने प्रजाजनों को कार्य दिलावे तथा कार्य से सम्बन्धित अन्य बातों को जैसे वेतन, अवकाश आदि को निश्चित करे। इस प्रकार की व्यवस्था निस्सदेह समाजवादी सिद्धान्तों को मान्यता देती है।

इस प्रकार धारा २८ के अनुसार 'श्रमिकों को सगठित होने, सौदाबाजी करने एवं सामूहिक रूप से कार्य करने की प्रत्याभूति है।"

धारा २५ के अनुसार यह व्यवस्था की गई है कि "सभी व्यक्तियों को स्वस्थ तथा सभ्य जीवन के निम्नतम स्तरों को बनाये रखने का अधिकार होगा।" जीवन के सभी क्षेत्रों में राज्य सामाजिक कल्याण, सुरक्षा तथा जन स्वास्थ्य की अभिवृद्धि हेतु प्रयास करेगा।"

इस प्रकार भौतिक कल्याण एवम् सामाजिक सुरक्षा के उपर्युक्त अधिकारों का अनुशीलन करने से यह भली भाँति विदित हो जाता है कि जापानी संविधान जन हितकारी भावनाओं से ओतप्रोत है। उसमें बौद्धिक, राजनैतिक, सामाजिक और आर्थिक सभी प्रकार के हितों को ध्यान में रखा गया है।

ब नागरिकों के कर्तव्य—अधिकारों के साथ साथ नागरिकों के कुछ कर्तव्यों का भी निरूपण किया गया है, जो इस प्रकार है।

सर्व प्रथम, प्रस्तावना में यह उद्घोषित किया गया है कि जापानी नागरिक शांति के आकांक्षी है और मानवीय सम्बन्धों के प्रति बड़े सजग व सचेत हैं। यहीं पर उन्होंने अपना यह कर्तव्य स्वीकार किया है कि वे दासता, शोषण अन्याय एवं पीड़न का उन्मूलन करेंगे।

दूसरे, धारा १२ विनिश्चित करती है कि अपनी स्वतन्त्रता व अधिकारों की रक्षा के लिए वे स्वय उत्तरदायी होंगे। इसी धारा में उनसे यह आशा की गई है कि वे अपनी स्वतन्त्रता तथा अधिकारों का कोई दुरुपयोग नहीं करेंगे और उनका प्रयोग करते समय जनहित को ध्यान में रखेंगे।

तीसरे, धारा २६ के अनुसार जहाँ जापानियों को योग्यतानुसार समशिक्षा प्राप्त करने का अधिकार दिया गया है, वहाँ उनका यह कर्तव्य भी बताया गया है कि वे अपनी अपनी स्वय की देखरेख में अपने बालक बालिकाओं को विधि द्वारा निर्धारित साधारण शिक्षा दिलावें ऐसी दशा में उनका यह कर्तव्य हो जाता है कि वे इस प्रकार से प्राप्त की हुई शिक्षा का उचित रीति से प्रयोग करें।

इसी प्रकार धारा २७ जहाँ नागरिकों को काम पाने का अधिकार देती है वहाँ यह भी निरूपण करती है कि 'काम करना तथा बच्चों का शोषण न करना सभी व्यक्तियों का कर्तव्य होगा।

अन्त में धारा ३० उपबन्धित करती है कि विधि द्वारा निर्धारित करों का देना नागरिकों का कर्तव्य होगा।

स अधिकार तथा कर्तव्यों की समीक्षा—उपर्युक्त विश्लेषण से यह स्पष्ट है कि जापानी संविधान में मूलाधिकारों का वर्णन विस्तृत एवम् व्यापक रूप से दिया गया है और नागरिकों को वे सभी अधिकार दिए गए हैं जो एक लोकतांत्रिक देश के निवासियों को मिलने चाहिएँ। इसमें भी कोई सन्देह नहीं कि यह संविधान पूर्वगामी संविधान की अपेक्षा अधिक उदार एवं प्रजातान्त्रिक है क्योंकि इसमें वर्णित अधिकारों का लक्ष्य जापानी जनजीवन को उच्च एवं उन्नतिशील बनाना है इसलिए इस संविधान को विश्व के अन्य प्रजातान्त्रिक संविधानों की कोटि में सरलता पूर्वक रखा जा सकता है, किन्तु केवल अधिकारों के परिगणन मात्र से काम नहीं चलता। जब तक अधिकारों की रक्षा का कोई उचित उपबंध न किया जाए, तब तक अधिकार अधिकार नहीं कहला सकते। अतः संविधान निर्माताओं का यह कर्त्तव्य होता है कि अधिकारों की घोषणा करते समय कोई ऐसा संवैधानिक संरक्षक भी बतलावें जो अधिकारों की उचित रीति से रक्षा करे तथा किसी भी दशा में उनकी अवहेलना न होने दे। यही कारण है कि वर्तमान समय में विश्व के अन्य संविधानों में जहां अधिकारों का उल्लेख किया जाता है वहां ऐसी स्पष्ट व्यवस्था भी की जाती है, जिससे उनका उल्लंघन न हो। उदाहरणार्थ, भारत में सर्वोच्च न्यायालय को यह दायित्व सौंपा गया है कि वह नागरिकों के अधिकारों की रक्षा करे। यदि संसद मौलिक अधिकारों का हनन करने वाला कोई कानून बनाती है तो सर्वोच्च न्यायालय उसे असंवैधानिक घोषित कर अप्रभावी बना सकती है। जापान के न्यायालय को ऐसा कोई दायित्व स्पष्ट रूप से नहीं दिया गया। इतना अवश्य है कि अधिकारों को पवित्र एवं अनुल्लंघनीय माना गया है और उनके अतिक्रमण न होने देने का दायित्व शासन पर छोड़ दिया गया है। केवल धारा ११ में इतना संकेत किया गया है कि सर्वोच्च न्यायालय का यह अधिकार है कि वह प्रत्येक कानून, आदेश और अध्यादेश आदि की जांच कर सकता है। यदि सर्वोच्च न्यायालय इस धारा के संकेत के अनुसार काम करे तो वह नागरिकों के अधिकारों के विरुद्ध निर्मित हुए कानून अध्यादेश अथवा आदेशों की जांच कर सकता है और यदि उचित समझे तो उन्हें अप्रभावी भी बना सकता है, यदि वह ऐसा न करे तो उसे लिए संवैधानिक रूप से उत्तरदायी नहीं ठहराया जा सकता। वास्तव में देखा जाए तो अधिकारों की रक्षा का भार सरकार के ऊपर ही है जैसा कि धारा ११ व १२ में व्यक्त किया गया है।

धारा ११ के अनुसार "नागरिकों को उनके मूल मानवीय अधिकारों के उपभोग से वंचित नहीं किया जावेगा। इस संविधान द्वारा व्यक्तियों को प्रदत्त मूल मानवीय अधिकार' वर्तमान तथा भविष्य दोनों समय के लिए हैं। वे शाश्वत तथा अनुलंघनीय हैं।

इसी भांति धारा १२ में कहा गया है कि "व्यक्तियों को जो अधिकार एवं सुविधाएं इस संविधान ने प्रदत्त की है, उनकी रक्षा व्यक्ति निरन्तर प्रयास द्वारा स्वयं करेंगे। वे अपने अधिकारों तथा कर्त्तव्यों का कोई दुरुपयोग नहीं करेंगे और उनका प्रयोग करते समय जनहित के लिए उत्तरदायी होंगे।"

सारांश यह है कि भारत की भांति जापान में मूल अधिकारों की रक्षा की कोई समुचित व्यवस्था नहीं की गई है। यही कारण है कि संविधान द्वारा प्रदत्त अधिकारों का जनता उचित उपयोग नहीं कर सकी है। इनमें धार्मिक शिक्षा तथा महिलाओं को अधिकार प्राप्त होने वाले अधिकार विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

दूसरे, अधिकारों के साथ साथ कर्त्तव्यों का परिगणन तो अवश्य किया गया है किन्तु वह बहुत ही संक्षिप्त एवं समास रूप में है। यदि अधिकारों की भांति कर्त्तव्यों का भी विशद एवं व्यापक विवरण दिया होता तो अधिक अच्छा रहता।

तीसरे, सोवियत संघ के संविधान की भांति यदि कर्त्तव्यों का दायित्व न समझने वाले व्यक्तियों को निश्चित दण्ड की व्यवस्था और होती, तो कर्तव्यों से कोई विमुख नहीं हो सकता था।

चौथे, कुछ समीक्षकों का मत है कि सैद्धान्तिक दृष्टि से तो अधिकारों का चयन बहुत सुन्दर एवं आकर्षक रहा है किन्तु व्यवहारिक दृष्टि से वे प्रयोग में नहीं लाये जाते।[1]

पांचवें, कुछ समीक्षकों का यह भी कहना है कि जापान निवासी अनुदार व रूढ़ि प्रिय हैं। फलतः नूतन संविधान उनकी भावना एवं विचारों में कोई उल्लेखनीय परिवर्तन नहीं कर सका है। इसलिए वहां की राजनैतिक, सामाजिक तथा सांस्कृतिक संस्थाएं पूर्ववत् बनी हुई हैं। उनमें किसी प्रकार की प्रगति अथवा विकास नहीं देखा जाता परिणामस्वरूप वहां के नागरिक अपने मौलिक अधिकारों का कोई उपभोग नहीं कर सके हैं।

---

1 'Unhappily there is ponderable evidence that the idealism reflected in new institutions, public and private, is not fully operative in practice.'
—Quigly and Turner The New Japan.

5.

सम्राट्
The Emperor

१. सम्राट् की प्राचीन स्थिति—प्रारम्भ मे जापान मे सामन्तशाही प्रथा थी। सम्पूर्ण देश अनेक सामन्ती सरदारो मे विभक्त था और प्रत्येक सामन्त अपने क्षेत्र का प्रशासन, केन्द्रीय सरकार के हस्तक्षेप किए बिना, स्वय ही करता था। सामन्तो के अधीन सेवक (Vassal) होते थे जो अपने स्वामी की आर्थिक तथा सैनिक सहायता करते थे।

टोकूगावा-युग मे भी इसी प्रकार की व्यवस्था पाई जाती थी। यद्यपि सिद्धांत-रूप मे देश का प्रशासन सम्राट् के अधीन केन्द्रीकृत था किन्तु वास्तव मे सम्राट् सामन्तो का केवल प्रधान था। यथार्थ रूप मे प्रशासन अधिकारी टोकूगावा वश का अध्यक्ष 'शोगुन' होता था, जो सम्राट् द्वारा नियुक्त किया जाता था। सम्राट् के पास इस युग मे कोई उल्लेखनीय शक्ति न थी।

शनैः शनैः सामन्तशाही प्रथा के दोष प्रगट होने लगे और जनता यह अनुभव करने लगी कि सामन्तो के स्थान पर सम्पूर्ण देश का प्रशासन एक ही व्यक्ति के अधीन होना चाहिए। इन विचारो के विकास ने सामन्तीय-प्रशासन को राजकीय-प्रशासन मे परिवर्तित कर दिया और एक नवीन युग की अवतारणा की जो 'मेइजी युग' के नाम से विख्यात हुआ।

मेइजी सविधान के अनुसार सम्पूर्ण देश का वास्तविक स्वामी सम्राट् होने लगा। प्रशासन व्यवस्था केन्द्रीभूत कर दी गई। शिण्टो-धर्म ने सम्राट् की स्थिति को और भी अधिक उच्च एव अलौकिक बना दिया। इस धर्म के अनुसार प्रशासन और धर्म मे कोई विभेद नही किया जाता था और सम्राट् ही धर्म का अध्यक्ष माना जाता था। इस प्रकार जहाँ सम्राट् को साम्राज्य मे शीर्ष स्थान प्राप्त हुआ, वहाँ धार्मिक क्षेत्र मे अध्यक्ष का पवित्र एव अलौकिक पद भी। अत वह धार्मिक एव राजनैतिक—आध्यात्मिक एव भौतिक—दोनो दृष्टिकोणो से एक महान् एव अलौकिक व्यक्ति था। धार्मिक दृष्टिकोण से सम्राट् का पद विशेष महत्व का था, क्योंकि उसे भगवान का स्वरूप समझा जाता था। उसके पद के विषय मे जॉन गुन्टर ने लिखा था "जापानी सम्राट्, ईश्वरीय होने के कारण, राज्य के अध्यक्ष से कही अधिक है। वह राज्य है। रूढ़िवादियो का विश्वास था कि सार्वभौमिक शक्ति स्वय सम्राट् के व्यक्तित्व में निवास करती है, सरकार के किसी अवयव मे

नही। सम्राट् और जनता एक ही हैं। केवल सम्राट् ही नही सभी जापानियो का विश्वास है कि उनका मूल दैवी अथवा अर्द्ध दैवी है।[1]

देव तुल्य मानने के कारण जापानी नागरिक अपने सम्राट् के प्रति बडी श्रद्धा रखते थे। इस तथ्य के पुष्टिकरण में निम्न बातें बताई जाती हैं —

प्रथम तो यह कि जब कभी उनका देव-तुल्य सम्राट् अपने प्रासादो से निकल कर पर्यटन के लिए बाहर जाता, तो सभी नागरिक बडे सम्मान एव आदर के साथ सिर नीचे किए हुए शान्त भाव से उसका अभिवादन करते थे,[2] क्योकि जापानियो का ऐसा विश्वास था कि यदि किसी व्यक्ति ने अपने नेत्र ऊँचे कर सम्राट को देख लिया, तो उसके नेत्र की ज्योति अविलम्ब चली जावेगी।

दूसरे जब कभी सम्राट् को नवीन वस्त्र सिलवाने की आवश्यकता होती थी, तो दर्जी उनके कपडो की नाप उससे पर्याप्त दूर खडे होकर लेता था। इसी भाँति सम्राट् के अस्वस्थ हो जाने पर उसके चिकित्सको को भी दूर से ही उसके रोग का निदान करना पडता था। यदि रोग असाध्य होता तो वे हाथो मे रेशमी दस्ताने पहनकर उसकी नब्ज देख सकते थे।

तीसरे' गेकियो का 'पुलिस-टावर' भी इसीलिए पूरा न हो सका, क्योंकि उससे सम्राट के प्रासाद का उद्यान दृष्टि गोचर होना था।

चौथे, सन् १९३६ म 'टाइम पत्रिका' मे सम्राट् का एक चित्र प्रकाशित हुआ। सम्पादको ने पाठको से यह निवेदन किया कि पत्रिका का पढकर वे उसे ऐसी जगह न फेंक दें जिससे सम्राट का निरादर हो।

पाँचवें, जापानी प्रजाजन सम्राट के व्यक्तित्व पर आलोचना करना अथवा टीका टिप्पणी करना एक निन्दनीय कार्य समझते थे, क्योकि उनकी दृष्टि मे वह एक अत्यन्त पवित्र एव अलौकिक व्यक्ति था। इतो का कहना है कि, "सम्राट् इतने पूज्य है कि उन पर श्रद्धा रहित अथवा अपमानजनक टीका-टिप्पणी करना अनुचित है। इस प्रकार सम्राट निन्दा तथा आलोचना से परे हैं और वे इतने पवित्र हैं कि कोई अन्याय अथवा अनुचित व्यवहार नही कर सकते।"

छठे, जापान की प्रत्येक शिक्षण सस्था मे सम्राट् का चित्र केन्द्रीय स्थान पर लटकाया जाता था जिससे वहा के विद्यार्थी उसके दर्शन कर अलौकिक गुणो की प्रेरणा ले सके।

सातवें, जापानी विद्यार्थियो के चरित्र को निर्मल बनाए रखने के लिए वहा *जो आचार-शास्त्र पढ़ाया जाता था उसका आधार केवल सम्राट् के प्रति भक्ति एव* निष्ठा थी।

साराशत जापान मे सम्राट तथा राजपरिवार का बडा सम्मान था।

यह तो हुई सम्राट् के प्रति जनता की निष्ठा एव मान्यता। यदि सम्राट् की

ओर से देखा जाए तो विदित होगा कि वह अपने को केवल एक साधारण व्यक्ति ही समझता था । उसने न तो कभी भी अपने को ईश्वर बतलाया और न ईश्वर का प्रतिनिधि ही । सम्राट हीरोहिटो ने पहली जनवरी सन् १९४६ को नूतन वर्ष के संदेश मे अपनी प्रजा से स्पष्ट कहा था कि "मुझमे कोई दैवी शक्ति नही है।" इस तथ्य की पुष्टि करते हुए टोकियो विश्व-विद्यालय के प्रोफसर यान्यावारा लिखते है "सम्राट ने कभी भी स्वय को जनता के सामने ईश्वर के रूप मे नही रखा। उन्होने तो अपने व्यक्तित्व के विषय मे सामान्यत प्रत्यक्ष तथ्य को ही रखा है परन्तु इसमे कोई सन्देह नही कि उनकी घोषणा का—उनको दैविक स्वरूप न मानने के विचारो पर—कोई प्रभाव न पडा। फलस्वरूप जनता ने अपने आप को पूर्णत स्वतन्त्र और प्रबुद्ध समझा ।

जापानियो को इस बात का बडा गर्व है कि विश्व मे ऐसा कोई राजवश नही है जो जापानी राजवश से अधिक प्राचीन हो। वर्तमान राजवश २६०२ वर्षों से भी अधिक समय से यहा राज्य करता आ रहा है। आधुनिक सम्राट् हीरोहिटो अपने वश का १२४ वा शासक है । जापानियो की मान्यता है कि उनका सम्राट् भगवान भास्कर की सन्तान है और उसे ईश्वर ने जापान के ऊपर शासन करने के लिए भेजा है। उनका प्रथम सम्राट, जो 'जिम्मू' नाम से प्रसिद्ध है, ११ फरवरी को राजसिंहासन पर आरूढ हुआ था । अत इस शुभ-तिथि की स्मृति मे इस दिन समस्त देश एव राजपरिवार एक चित्ताकर्षक उत्सव मनाता है और उस दिन सभी राजकार्यालय बन्द रहते हैं।

जापान के सम्राट् का राजतिलक इग्लैंड की भाति नही होता । वहा सम्राट् अपने पूर्वजो की दिवगत आत्माओ को अपने सिंहासनारूढ होने की सूचना देता है। इस अवसर पर समस्त जनता भगवान भास्कर की आराधना करती है और सम्राट को एक शीशा, हार तथा तलवार देकर अलकृत करती है । ये तीनो वस्तुए जापान मे शुभ मानी जाती हैं।

यहा के सम्राट् के विषय मे जापानियो का विश्वास है कि वह विश्व मे सबसे अधिक सम्पन्न व्यक्ति है। जान गुन्टर ने इस विषय में अपनी पुस्तक (Inside Asia) के पाचवें पृष्ठ पर लिखा है, "जापान का सम्राट् निस्सदेह विश्व का सबसे अधिक सम्पन्न व्यक्ति है। वह इसलिए, कि वह जापान का स्वामी है । समस्त देश उसका है।" यह कथन आश्चर्यजनक प्रतीत हो सकता है, किन्तु जापानी अधिकारी उसको ऐसा ही मानते है। जापानी मन्त्री 'उएहारा' जापान के राजनैतिक विकास के लेखक—लिखते हैं, प्रत्येक वस्तु का प्रादुर्भाव सम्राट् से हुआ है। उसमे प्रत्येक वस्तु निवास करती है, जापान की भूमि पर ऐसी कोई वस्तु नही, जिसका उससे पृथक अस्तित्व हो। वह राज्य का एक मात्र स्वामी है।"

नवीन संविधान के निर्माण करते समय जापानियों के सामने यह प्रश्न था कि सम्राट का प्रशासन मे क्या स्थान होना चाहिए। कुछ व्यक्तियो का कहना था कि गत ४० वर्षों मे जापान मे 'जो सैनिकवाद का विकास हुआ है उसके लिए सम्राट् उत्तरदायी हैं, क्योंकि उसने उसकी प्रगति को रोकने के लिए कभी कोई प्रयास नहीं किया। अत वे उसके पद को बिल्कुल समाप्त कर देना चाहते थे, परन्तु सम्राट् के प्रति श्रद्धा और भक्ति रखने वाले व्यक्ति इस पक्ष मे न थे। वाद-विवाद के अनन्तर सम्राट् का पद रखा तो गया, किन्तु उसकी अलौकिक एव असाधारण स्थिति म क्रान्तिकारी परिवर्तन कर दिए गए। उसके व्यक्तित्व से देवत्व का लोप कर, उसे पृथ्वी पर रहने वाला एक साधारण मानव बना दिया गया। अब वह जनता के सामने आता है और उससे हाथ मिलाता है। वह खेल कूदो के मैदानो मे दिखाई देता है तथा फार्मों, फैक्टरियो एव खानो का निरीक्षण करता है। जनता भी जहा कही उसे देखती है, श्रद्धा से सिर झुका कर उसका अभिवादन करती है। अब वह उसके प्रासादो मे जाकर, उसकी वर्ष गाठ आदि के मागलिक अवसरो पर शुभ-कामनाए भी दे सकती है। सम्राट के चित्र भी आजकल साधारण नागरिक के वेष-भूषा मे प्रकाशित होने लगे हैं, किन्तु सन् १९४७ से पूर्व वे सैनिक वेश में अथवा परम्परागत औपचारिक वेश-भूषा मे ही प्रकाशित होते थे। अब सम्राट के विषय मे आलोचनाए प्रकाशित होने लगी हैं तथा उसके सम्बन्ध मे वाद-विवाद भी खडे किए जाते हैं। सन् १९५३ मे जापानी समाचार पत्रो ने उसकी कटु आलोचना की, क्योंकि वह अपने दरबारियो के कहने पर अपने भाई के मृत-सस्कार मे सम्मिलित नहीं हुआ था। *अत स्पष्ट है कि उसकी स्थिति मे पहले की अपेक्षा पर्याप्त अन्तर आ गया है।* इस सदर्भ मे विद्वानो का मत है कि अब कोई ऐसी आशका नहीं कि निकट भविष्य मे उसकी स्थिति मे कोई और कमी आवे, परन्तु फिर भी कुछ लेखको के अनुसार इतना अवश्य है कि "जापान की स्त्रियो को कानूनी मुक्ति मिल जाने से सम्राट् की स्थिति को एक विशेष खतरा उत्पन्न हो गया है। इस प्रकार की मुक्ति को सयुक्त राष्ट्र अमेरिका मे सन् १८६२ की दी गई दासों की मुक्ति के समकक्ष ही महत्वपूर्ण समझा जाता है। "अब तक जापान का सम्राट सामाजिक जीवन की पिरामिड का शक्तिशाली शीर्ष पत्थर रहा है। उसके शाही पद को लौकिक बनाने से तो केवल उस शीर्ष पथर की कांति मे थोडा बहुत अन्तर आया किन्तु स्त्रियों की कानूनी मुक्ति ने तो कदाचित उस पिरामिड के धरातल को ही हिला दिया है।"

एतदर्थ सम्राट् की पूर्वगामी अनुपम शक्तियो का एक दम लोप हो गया है, किन्तु इसका यह अभिप्राय नहीं कि वहा की जनता के हृदय मे उसके प्रति जो पहले प्रतिष्ठा और निष्ठा थी उसमे किसी प्रकार का अन्तर आया हो। आज भी जापान-

निवासी अपने सम्राट् से उतना ही प्रेम करते हैं, जितना कि इग्लैंड निवासी अपने राजा से। यानागा लिखते हैं कि, "सम्राट् की प्रशासनिक शक्तियों की हानि से उसकी प्रतिष्ठा मे किसी भी प्रकार की कमी नहीं हुई है। नवीन सविधान के अन्तर्गत जहा तक सम्राट् के प्रति जनता के रुख का सम्बन्ध है वह आज भी कम से कम चिन्ह रूप मे सम्राट् ही का राज्य माना जाता है।

सक्षिप्तत जापानी सम्राट् अब पहले की भांति शक्ति, वैभव तथा देवत्व का प्रतीक नही रहा। अब वह धरातल पर रहने वाला एक साधारण व्यक्ति समझा जाता है। राजनैतिक क्षेत्र मे वह एक सवैधानिक शासक है। आश्चर्य की बात यह है कि शक्तियो मे क्रान्तिकारी परिवर्तन होते हुए भी, उसके कार्य कलापो मे अब भी देवत्व का अनुभव किया जाता है।

२ उत्तराधिकार—नवीन सविधान से पूर्व गद्दी के उत्तराधिकार के प्रश्न का निर्णय सम्राट के कानून द्वारा किया जाता था। वहा की ससद (Diet) अथवा प्रजा इस प्रश्न के निर्णय मे कोई हस्तक्षेप नहीं कर सकती थी, क्योंकि प्रभुसत्ता सम्राट् मे निहित थी। ससद की स्थिति तो केवल एक परामर्शदात्री सभा जैसी थी। जब से नवीन सविधान लागू हुआ है तब से यह शक्ति सम्राट् से ससद मे हस्तान्तरित कर दी गई है। अब धारा २ के अनुसार सम्राट् का पद वश-परम्परानुकूल रखा गया है और उसका उत्तराधिकार ससद द्वारा पारित साम्राज्यीय गृह-कानून द्वारा निश्चित किया जाता है। इसी प्रकार इग्लैंड मे भी ससद द्वारा पारित कानून पर ही उत्तराधिकार के प्रश्न का निर्णय आधारित है। दोनो ही देशो मे सम्राट् की मृत्यु के अनन्तर ज्येष्ठ पुत्र गद्दी का उत्तराधिकारी होता है। पुत्र न होने पर पुत्री भी इस पद की अधिकारिणी हो सकती है। यदि सम्राट् किसी भयकर रोग से पीडित होने के कारण राज्य कार्य करने मे असमर्थ हो, अथवा उत्तराधिकारी अवयस्क हो, तो राज-सचालक (Regent) नियुक्त किया जाता है, जो सम्राट् के प्रतिनिधि के रूप मे कार्य करता है।

३ सम्राट् का व्यक्तिगत खर्च—आजकल सम्राट के महल का सम्पूर्ण व्यय वहा की ससद द्वारा स्वीकृत किया जाता है, परन्तु १९४७ से पूर्व उसे इस प्रकार की स्वीकृति प्रदान करने का कोई अधिकार प्राप्त न था। नवीन सविधान के आरम्भ होने के अनन्तर सम्राट् की अधिकाश सम्पत्ति सरकार के अधीन करली गई है। अब उसके पास बहुत थोडी सम्पत्ति शेष है और उस पर भी उसे साधारण नागरिक की भाति कर देना पडता है। इस सदर्भ मे धारा ८ उपबन्धित करती है कि सम्राट् अथवा राजपरिवार का कोई व्यक्ति ससद की आज्ञा के बिना न तो कोई सम्पत्ति किसी से प्राप्त कर सकता है और न दे ही सकता है।

४. सम्राट् की शक्तिया—पूर्वगामी सविधान के अनुसार सम्राट् के प्रशा-

सैनिक कार्य अत्यन्त महत्वपूर्ण थे और उसकी शक्तियाँ बहुत व्यापक थीं। वह राजनैतिक शक्ति एवं कानूनी सत्ता का स्रोत था। उसे प्रशासन के संगठन तथा शाखाओं के निर्धारण का पूर्ण अधिकार था मेइजी संविधान की धारा १० उपबन्धित करती थी कि "सम्राट् प्रशासन के विभिन्न विभागों का संगठन तथा समस्त सैनिक और असैनिक पदाधिकारियों का वेतन निश्चित करते हैं और उनको नियुक्त तथा पृथक् भी करते हैं।" देश का प्रमुख शासन होने के कारण वह जल और थल सेना का स्वामी था। प्रत्येक वर्ष सेना में भर्ती होने वाले नए सैनिकों की संख्या निश्चित करना, सेना का संगठन करना, युद्ध की घोषणा करना, सन्धि करना तथा विशेष प्रकार के सैनिक-नियमों की उद्घोषणा करना आदि कार्य उसके अधीन थे। सम्राट् को सैनिक कानून (martial law) घोषित करने का भी अधिकार था। सैनिक कानून की घोषणा होने पर सम्राट के अध्यादेश द्वारा संसद निर्मित कानून भी स्थगित हो जाते थे।

इस संविधान की धारा ९ के अनुसार वह प्रजाजनों के सुख, समृद्धि एवं शांति के लिए आज्ञापत्र प्रसारित कर सकता था, किन्तु इस प्रकार के आज्ञा-पत्रों से न तो जनता की सम्पत्ति ही छीनी जा सकती थी और न संसद द्वारा निर्मित कानूनों में कोई परिवर्तन ही किया जा सकता था।

सम्राट् की उपर्युक्त व्यापक एवं पूर्ण शक्तियों के देखने से ऐसा भ्रम हो सकता है कि वह एक स्वेच्छाचारी तथा निरंकुश शासक था, परन्तु किटसावा और यानागा दोनों ही लेखक इस विचार से सहमत नहीं होते। किटसावा लिखते हैं, 'सम्राट् यथार्थ रूप में निरंकुश शासक न था, दूसरे शब्दों में उसने केवल संवैधानिक अध्यक्ष के रूप में कार्य किया।" प्रसिद्ध लेखक यानागा का भी ऐसा ही मत है। वह लिखता है, 'यद्यपि सन् १८८९ के संविधान के अनुसार सम्राट को सभी शक्तियाँ प्राप्त थीं परन्तु उसने अपनी पहल से उन्हें कभी भी काम में नहीं लिया। उसने सदैव ही मन्त्रियों के परामर्श से प्रशासन किया। इसलिए प्रशासन की भूलों का दायित्व मन्त्रियों पर था　　　यह कहा जा सकता है कि [illegible] सम्राट् ब्रिटेन के राजा से भी अधिक राज्य करता था, शासन नहीं।

अतः स्पष्ट है कि १९४७ से पूर्व जापान का सम्राट् इंगलैण्ड के राजा की भाँति एक संवैधानिक अध्यक्ष के रूप में कार्य करता था। यद्यपि संवैधानिक [illegible] से उसे सभी प्रशासनिक शक्तियाँ प्राप्त थीं।

नवीन संविधान के लागू होने पर, सम्राट् की पूर्ववर्ती शक्तियाँ उससे छीन ली गई। अब वह केवल राज्य और प्रजा की एकता का प्रतीक है और उसकी स्थिति का स्रोत जनता की इच्छा है, जिसमें प्रभुसत्ता निहित है।

धारा ३ उपबन्धित करती है कि राज्य-विषयक सम्राट् के सभी कार्यों के

लिए मन्त्रि-परिषद् का परामर्श तथा अनुमोदन अनिवार्य होगा और इसके लिए वही उत्तरदायी भी होगा। इसी भाँति धारा ४ मे बतलाया गया है कि "सम्राट् राज्य-विषयक केवल वे ही कार्य सम्पादित करेंगे जो इस सविधान द्वारा उन्हें प्रदत्त किए गए हैं और प्रशासन के सम्बन्ध मे उनकी कोई शक्ति न होगी। धारा ६ के अनुसार सम्राट् ससद द्वारा मनोनीत प्रधानमन्त्री और मन्त्रि मडल द्वारा मनोनीत सर्वोच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश को नियुक्त करता है।

धारा ७ के अनुसार सम्राट के निम्न कृत्य और बतलाए गए है—

(१) सविधान के सशोधनो, विधियो, केबिनेट के आदेशो तथा सन्धियो की उद्घोषणा करना,

(२) ससद का सत्र आहूत करना,

(३) प्रतिनिधि सदन का विघटन करना,

(४) डायट के सदस्यो के सामान्य निर्वाचन की घोषणा करना,

(५) राज्य के मन्त्रियो तथा विधि द्वारा व्यवस्थित अन्य अधिकारियो को नियुक्त तथा पदच्युत करना और राजदूतो एव मन्त्रियो की शक्तियो तथा परिचय पत्रो को प्रमाणित करना,

(६) सामान्य तथा विशेष क्षमादान,

(७) दण्ड को कम करना प्राण दण्ड को कुछ समय के लिए स्थगित करना, मुक्ति तथा अधिकारो के पुन प्रदान करने को प्रमाणित करना, सम्मानित उपाधियों का वितरण करना स्वीकृति पत्रो तथा विधि द्वारा व्यवस्थित कूटनीतिक आलेखों को प्रमाणित करना, विदेशी राजदूतो एव मन्त्रियो का स्वागत तथा औपचारिक कार्यों का सम्पादन।

उपर्युक्त वर्णन से स्पष्ट है कि जापानी सम्राट् केवल 'वैध' अथवा ध्वज मात्र' रह गया है। इस तथ्य को धारा ३ ने और भी अधिक स्पष्ट कर दिया है। उसके अनुसार वह राज्य सम्बन्धी प्रत्येक कार्य केबिनेट के परामर्श पर ही कर सकता है। निष्कर्षत सम्राट के पास अब कोई प्रशासनिक शक्ति अथवा अधिकार शेष नहीं है।

५ जापान के सम्राट एव इगलैंड के राजा की तुलना—१ जापान और इगलैण्ड दोनों ही वैधानिक राजतान्त्रिक देश हैं, जिनके सर्वोच्च अधिकारी वहाँ के सम्राट् हैं। किन्तु दोनो ही देशो के सम्राट केवल औपचारिक शासक है क्योंकि प्रशासन की वास्तविक शक्तियाँ मन्त्रि मडलो को हस्तान्तरित कर दी गई हैं। व स्वेच्छा से कोई कार्य नही कर सकते। व्यक्तिगत हो अथवा सार्वजनिक, सभी कार्यों के लिये उन्हे मन्त्रियो से परामर्श लेना तथा उसके अनुरूप कार्य करना पडता है। उदाहरणत सन् १९३६ मे इगलैण्ड के राजा एडवर्ड अष्टम् लेडी सिम्पसन स

विवाह करना चाहते थे किन्तु उनका प्रधानमन्त्री स्टैनले वाल्डविन उनके इस विचार से सहमत नहीं हुआ, अत उन्हें राजसिंहासन त्याग करना पडा। जापान के सम्राट की भी ठीक यही स्थिति है।

(२) दोनो देशो के राजवश बहुत प्राचीन हैं, यद्यपि जापानी अपने राजवश को अधिक प्राचीन बताते हैं।

(३) दोनो ही देशो मे सम्राट की मृत्यु के अनन्तर ज्येष्ठ पुत्र ही गद्दी का अधिकारी होता है।

(४) यद्यपि इगलैंड और जापान दोनो देशो मे प्रजातन्त्रिक व्यवस्था स्थापित हो चुकी है और दोनो ही सम्राट शक्तियो से वचित कर दिए गए हैं, किन्तु सम्राटों का सम्मान एव प्रतिष्ठा पूर्ववत् ही बनी हुई है।

(५) दोनो ही देशो के सम्राटो के महलो का व्यय ससद द्वारा स्वीकृत किया जाता है।

उपर्युक्त समानताओ के होते हुए भी दोनो सम्राटो के अधिकारो मे अनेक विभिन्नताए दिखलाई देती हैं।

प्रथम इगलैंड के सम्राट का अधिकार परम्पराओ पर आधारित है, जब कि जापान के सम्राट का अधिकार वहाँ के नूतन सविधान पर। अत. इंगलैंड का सम्राट जापानी सम्राट की तुलना अधिक शक्तिशाली है। प्रथम तो इसलिए कि इगलैंड मे विशेष परिस्थितियो के आ जाने पर वहा का राजमुकुट प्रधान-मन्त्री का चयन स्वविवेक से कर सकता है। यद्यपि ऐसी परिस्थिति बहुत ही कम आती है किन्तु जब कभी यह स्पष्ट नही हो पाता कि बहुमत दल का नेता कौन है तो राजा स्वेच्छा से किसी भी ससद सदस्य को प्रधान-मन्त्री नियुक्त करने का अधिकार रखता है। उदाहरणार्थ सन् १८९४ मे प्रधानमन्त्री पद के कई प्रत्याशी होने की दशा मे महारानी विक्टोरिया ने लार्ड रोजबरी को प्रधानमन्त्री पद पर नियुक्त किया था, लेकिन जापान के नवीन सविधान के अनुसार यहा के सम्राट को प्रधानमन्त्री के चयन मे स्वेच्छा से काम लेने का अधिकार नही दिया गया है। यहा तो प्रधान-मन्त्री का चयन ससद करती है, सम्राट तो केवल औपचारिक रूप से उसे नियुक्त करता है।

दूसरे, इगलैंड मे प्रधान-मन्त्री की माग पर वहा का सम्राट हाउस ऑफ कामन्स (House of Commons) का विघटन कर सकता है, परन्तु यदि वह उसकी प्रार्थना को अस्वीकार करना चाहे तो उसे ऐसा करने का परमाधिकार (Prerogative) प्राप्त है। इस प्रकार का परमाधिकार जापान के सम्राट को प्राप्त नहीं है। यदि जापान का प्रधानमन्त्री अपने सम्राट से प्रतिनिधि-सदन के विघटन की प्रार्थना करता सम्राट को अनिवार्य रूप से उसे विघटन करना ही पड़ेगा।

तीसरे, इंग्लैंड के राजा के वास्तविक अधिकारों का वर्णन करते हुए प्रसिद्ध लेखक बैजहोट (Bagehot) लिखता है कि "राजा का यह अधिकार है कि मन्त्री उससे परामर्श लें, उसका यह भी अधिकार है कि वह मन्त्रियों को प्रोत्साहित करे और उसका यह भी अधिकार है कि उन्हें सावधान रखे।" "The king has the right to be consulted, the right to encourage and the right to warn" परन्तु जापान के सम्राट को यह अधिकार भी प्राप्त नहीं है। यानागा यह लिखता है कि "बिल्कुल स्पष्ट है कि सम्राट पहले की अपेक्षा अब व्यवहारिक रूप में नहीं के बराबर है, जबकि ब्रिटिश राजा को यह अधिकार है कि प्रधानमन्त्री उससे परामर्श लें, वह मन्त्रियों को कुछ कार्य के लिए प्रोत्साहित करे तथा कुछ कार्य न करने पर उन्हें सावधान रखे, जापान के सम्राट को ऐसा कोई अधिकार प्राप्त नहीं है।"

अन्त में इंग्लैंड के सम्राट को व्यक्तिगत सम्पत्ति के अर्जन, धारण, व्ययन तथा प्रबन्ध का वैसा ही अधिकार प्राप्त है जैसा किसी साधारण नागरिक को। इसके विपरीत जापानी संविधान के अनुसार वहाँ के राज परिवार का कोई भी व्यक्ति संसद की आज्ञा के बिना न तो किसी से सम्पत्ति प्राप्त ही कर सकता है और न किसी को दे ही सकता है।

उपर्युक्त विवेचन से ज्ञात होता है कि जापानी सम्राट की शक्तियाँ इंग्लैंड के राजा की तुलना में अधिक सीमित हैं, क्योंकि वहाँ के वर्तमान संविधान द्वारा उसकी समस्त पूर्वार्जित शक्तियाँ उससे छीन ली गई हैं, जबकि इंग्लैंड में सभी प्रशासनिक शक्तियाँ सिद्धान्त रूप से आज भी राजा में निहित हैं, यद्यपि वह व्यवहारिक रूप में उन्हें प्रयोग नहीं कर सकता है।

६. सम्राट के पद का औचित्य—संसदीय लोकतन्त्र की स्थापना के अनन्तर, जापान में सम्राट के पद का होना युक्ति-संगत प्रतीत नहीं होता। यही कारण है कि द्वितीय विश्वयुद्ध की समाप्ति पर संयुक्त राष्ट्र अमेरिका तथा अन्य देशों में यह विचार उत्पन्न होने लगा कि जापान में लोकतान्त्रिक व्यवस्था के साथ साथ सम्राट का पद किस प्रकार बना रहेगा। इस विषय पर विद्वानों में बड़ा वाद-विवाद हुआ। अन्ततः इंग्लैंड के राज्य-पद की भांति सम्राट-पद को बनाए रखना ही उचित प्रतीत हुआ। इस संस्था के बने रहने के निम्न कारण प्रतीत होते हैं—

(१) ऐतिहासिक दृष्टिकोण से सम्राट का पद जापान में अत्यन्त प्राचीन है। वह लगभग २६०० वर्षों से भी पुराना है। इतने समय से वहाँ की जनता उसके अस्तित्व को देखते-देखते उसके पद से इतनी अभ्यस्त हो गई है कि उसके अनस्तित्व की कल्पना करना उनके लिए नितान्त अस्वाभाविक है। शताब्दियों से

जापानियों के हृदय में अपने देवतुल्य सम्राट के प्रति असीम श्रद्धा एवं भक्ति रही है। यदि उसके पद को समाप्त कर दिया गया तो राज भक्ति के आवेश में जनता में एक भीषण क्रान्ति हो सकती है।

(२) आरम्भ से ही सम्राट का पद जापान में बड़ा सराहनीय रहा है। इंग्लैंड के राजाओं के विपरीत उसने कभी भी निरंकुश एवं स्वेच्छाचारी बनने का प्रयास नहीं किया है। यद्यपि मेइजी संविधान के अन्तर्गत उसमें समस्त सार्वभौम शक्ति निहित थी, किन्तु उसने, इंग्लैंड के स्टुवर्ड-काल के राजाओं की भांति उसका दुरुपयोग कर कभी भी जनता के अधिकारों को कुचलने का प्रयास नहीं किया। इसलिए सम्राट के पद के लिए जापानी जनता में कोई परम्परागत घृणा नहीं है, प्रत्युत् वह उससे अत्यधिक प्रेम करती है। यदि जापानी सम्राटों ने रूस के जार राजाओं अथवा फ्रान्स के लुई चतुर्थ की तरह व्यवहार किया होता तो उनका पद अवश्य उसी भांति समाप्त हो गया होता, जिस प्रकार रूस और फ्रान्स के राजतन्त्र नष्ट हो गए।

(३) नूतन संविधान में सम्राट की सभी पूर्वार्जित शक्तियां उससे छीन ली हैं। अब उसकी शक्तियों को इतना सीमित कर दिया गया है कि उसके निरंकुश होने की स्वप्न में भी आशंका नहीं हो सकती।

(४) जापानी सम्राट हीरोहिटो बड़ा ही दूरदर्शी व्यक्ति है। जापान के विदेशी सत्ता के आधीन हो जाने पर उसने उसके प्रति भक्ति पूर्ण व्यवहार किया, जिसके फलस्वरूप आधिपत्यिक सत्ता (Occupational Authority) का उसे पूर्ण समर्थन प्राप्त हो गया। दूसरे देवत्व की भावना को त्याग कर उसने जन साधारण से अधिक सम्पर्क बढ़ा लिया। अतः उसको विदेशी सत्ता के साथ-साथ अपनी जनता का भी समर्थन प्राप्त हुआ।

(५) जापानी अंग्रेजों की भांति बड़े ही रूढ़िवादि हैं। वे उन सभी संस्थाओं के समर्थक हैं जो प्राचीन समय से चली आ रही हैं। उनके आन्तरिक भाग में चाहे वे कितना ही ठोस परिवर्तन कर दें, किन्तु उनके वाह्य स्वरूप को यथापूर्व बनाए रखना चाहते है।[1] यद्यपि नूतन संविधान द्वारा सम्राट के प्राचीन अधिकार उससे छीन लिए गए है, किन्तु फिर भी वे उसके पद को बिल्कुल समाप्त करना नहीं चाहते, क्योंकि प्रथम तो उसके अस्तित्व से उनकी ऐतिहासिक परम्परा की रक्षा होती है और दूसरे, वर्तमान स्थिति में उससे किसी प्रकार की हानि की आशंका शेष नहीं है।

(६) इस पद के बने रहने का एक यह भी कारण है कि जापान का सम्राट सदैव से राष्ट्रीयता का प्रतीक रहा है, उसने न तो कभी राजनैतिक उथल पुथल में भाग ही लिया और न देश की नीति निर्माण में तथा उनके मूर्तरूप देने में कोई सक्रिय योग ही दिया।

(७) जापानी अपने सम्राट को पिता तुल्य समझते हैं। उनका कहना है कि जिस प्रकार पिता के न होने पर, एक परिवार सन्तप्त एवं अस्त व्यस्त हो जाता है, ठीक उसी प्रकार सम्राट के बिना देश का सगठित एव सुखी रहना भी असम्भव है।

(८) सम्राट के प्रति जनता का सम्मान, आदर और स्नेह, उसकी राष्ट्रीय भावना का द्योतक है।

(९) जापान मे उत्तरदायी शासन की व्यवस्था की गई है। इस प्रकार की प्रणाली मे कार्यपालिका द्वैत होती है। —

एक नाममात्र की और दूसरी वास्तविक। सम्राट प्रथम कोटि मे आता है। यदि सम्राट-पद को बिल्कुल समाप्त कर दिया गया तो फिर उसके स्थान पर कोई दूसरी सस्था स्थापित करनी पडेगी। इस सस्था की स्थापना के लिए व्यय के साथ-साथ निर्वाचन की भी व्यवस्था करनी पडती है और उसको कुछ शक्तिया भी देनी पडती हैं। सम्राट के रखने से यह लाभ है कि एक तो वह निष्पक्ष एव तटस्थ व्यक्ति है, दूसरे एक लम्बे समय से सिंहासनारूढ़ होने के कारण उसके राजनैतिक अनुभव से भी सरकार लाभ उठा सकती है और उसके निर्वाचन म भी किसी प्रकार का व्यय नहीं करना पडता। कभी कभी तो उसके महान व्यक्तित्व से विभिन्न दलो के वैमनस्य तथा प्रशासन मे उत्पन्न होने वाले मतभेद भी दूर हो जाते हैं।

इन्ही उपयोगिताओ के कारण जापान का सम्राट आज भी जनता की सतुष्टि का जनक बना हुआ है।

RESERVED BOOK

6.

मन्त्रि मण्डल

(Cabinet)

१ प्रारम्भ—इंग्लैंड की भांति जापान की मंत्रिमण्डल प्रणाली का इतिहास अधिक प्राचीन नहीं है, क्योंकि पूर्ववर्त्ती संविधान में इस प्रकार की कोई व्यवस्था न थी। यद्यपि धारा ५२ के अनुसार मन्त्री तो थे और वे अपने-अपने विभागों के संबंध में सम्राट को परामर्श देते थे, और उसके लिये उत्तरदायी भी थे, किन्तु संसदीय शासन प्रणाली के अनुसार वे अपने कृत्यों के लिये संसद (Diet) के प्रति सामूहिक रूप से उत्तरदायी न थे। इन मन्त्रियों में एक प्रधानमन्त्री होता था जो जेनरो के परामर्श पर सम्राट द्वारा नियुक्त किया जाता था। उसकी नियुक्ति के अनन्तर सम्राट उसे अन्य मन्त्रियों के चयन की आज्ञा देता था। मन्त्रियों की नियुक्ति तथा कार्य विभाजन में वह पूर्ण रूपेण स्वतन्त्र था। सम्राट, जेनरो अथवा कोई प्रशासनिक अवयव उसके इस कार्य में किसी प्रकार का हस्तक्षेप नहीं करता था।

संविधान के लागू होने से बहुत दिन पूर्व सन १८८५ में राजकीय अध्यादेश द्वारा जापान में ९ विभागों का संगठन किया गया। इसके अनन्तर वहाँ मन्त्री परिषद् की नींव पड़ी, और संविधान ने भी उसे मान्यता दे दी। इस प्रकार देश का समस्त प्रशासन केबिनेट के आधीन हो गया, किन्तु फिर भी वह संवैधानिक रूप से संसद् (Diet) के प्रति उत्तरदायी न थी। शनैः शनैः संसद् अपना नेतृत्व प्राप्त करने लगी, और द्वितीय विश्वयुद्ध के अन्त तक केबिनेट पूर्णतया उसके अधीन हो गई। संवैधानिक रूप से यह नवीन संविधान है जिसमें जापान में मन्त्रिमण्डल प्रणाली का शुभारम्भ किया।

प्रथम मन्त्रिमण्डल का निर्माण सन् १८८५ में राजकुमार इतो के नेतृत्व में हुआ था। तब से अब तक ६१ मन्त्रिमण्डल बन चुके हैं। वर्तमान संविधान के अन्तर्गत आजकल सत्रहवां मन्त्रिमण्डल कार्य कर रहा है, जिसके प्रधानमन्त्री श्री इसाकू साटो (Esaku Sato) है।[1]

२ मंत्रि मण्डल का संगठन —नवीन संविधान के पाँचवें अध्याय में केबिनेट के संगठन, निर्माण, कार्यों आदि का वर्णन किया गया है। धारा ६७ में कहा गया

1 No 2–B 1 (Aug. 65), Facts about Japan, Public Information Bureau, Ministery of Foreign Affairs, Japan

है कि सर्वप्रथम प्रधानमन्त्री का निर्देशन (Designation) संसद के सदस्यों में से उसके एक प्रस्ताव द्वारा किया जावेगा। यदि उसके निर्देशन के प्रश्न पर, संसद के दोनों सदनों में मतभेद उत्पन्न हो जावे, तो उसके निराकरण के लिये निम्न उपाय बताया गया है —

"यदि प्रतिनिधि सदन और सभासद् सदन इस विषय पर एकमत न हों तथा कानून द्वारा व्यवस्थित दोनों सदनों की एक संयुक्त समिति के प्रयत्नों से भी सहमति प्राप्त न हो सके अथवा सभासद् सदन प्रतिनिधि सदन द्वारा नाम तै कर लेने के अनन्तर दस दिवस के भीतर-भीतर कोई निर्णय न ले सके (इस समय में विश्राम काल छोड़ दिया गया है), तो फिर प्रतिनिधि सदन का निश्चय ही संसद का निर्णय मान लिया जावेगा।"[1]

अतः स्पष्ट है कि प्रधान मन्त्री के चयन में उच्च सदन को निम्न सदन की तुलना में निर्बल रखा गया है। संसद द्वारा नामांकन होने पर प्रधानमन्त्री की औपचारिक नियुक्ति सम्राट द्वारा की जाती है।[2] इस सम्बन्ध में यह स्मरण रखना चाहिये कि इंगलैंड के सम्राट की भांति जापान का सम्राट स्वविवेक से कार्य नहीं कर सकता है। उसे अनिवार्य रूप से उसी व्यक्ति को प्रधानमन्त्री नियुक्त करना पड़ता है, जिसे संसद् ने नामांकित किया हो। यह व्यवस्था इंगलैंड की प्रथा से सर्वथा भिन्न है। इंगलैंड में यदि निम्न सदन (House of Commons) में किसी भी दल का बहुमत न हो, तो फिर राजा को यह अधिकार है कि वह स्वविवेक से किसी ऐसे संसद्सदस्य को प्रधानमन्त्री बना दे, जो निम्न सदन में अपने साथ बहुमत स्थापित कर सके।

प्रधानमन्त्री की नियुक्ति के पश्चात अन्य मन्त्री नियुक्त किये जाते हैं, किन्तु उनकी नियुक्ति में संसद् के निर्देशन की आवश्यकता नहीं होती है। उनको प्रधानमन्त्री स्वयं नियुक्त करता है। उनका चयन करते समय, उसे दो विशेषताओं पर अवश्य ध्यान देना पड़ता है—प्रथम तो यह कि कम से कम आधे मन्त्री संसद के सदस्य हों, दूसरे, सभी मंत्री असैनिक हों।

बड़े आश्चर्य की बात है कि विधान निर्मित करते समय, उसके निर्माताओं ने यह आवश्यक नहीं समझा कि सभी मन्त्री संसत्सदस्य होने चाहिए। अन्य संसदात्मक देशों में इस प्रकार का व्यवधान नहीं पाया जाता। व्यावहारिक दृष्टि से, वर्तमान समय में मन्त्रिमण्डल के सभी सदस्य संसद् से लिये जाते हैं, जिनमें से अधिकांश प्रतिनिधि सदन के होते हैं। सभी मन्त्री सामूहिक रूप से संसद के प्रति उत्तरदायी होते हैं। यदि प्रतिनिधि सदन किसी एक मन्त्री के विरुद्ध अविश्वास का प्रस्ताव पारित करदे, तो सभी मन्त्रियों को अपने-अपने पदों से त्यागपत्र देना

---

१ धारा ९६

२ धारा ६

पडता है। इस प्रकार जापान मे उत्तरदायी शासन व्यवस्था स्थापित की गई है। इस सम्बन्ध मे सी यानागा (C Yanaga) लिखता है कि, "सन् १९४७ के सविधान के अनुसार जापानी सरकार कार्यरूप मे ब्रिटिश सरकार से बहुत साम्य रखती है चाहे भावना मे उतना नही। ससद द्वारा विनिश्चित नीति के अनुसार उसका राष्ट्रीय कार्यपालिका पर सर्वोच्च नियन्त्रण है कम से कम सवैधानिक रचना की दृष्टि से, जापान मे उत्तरदायी प्रशासन स्थापित किया गया है।' [3]
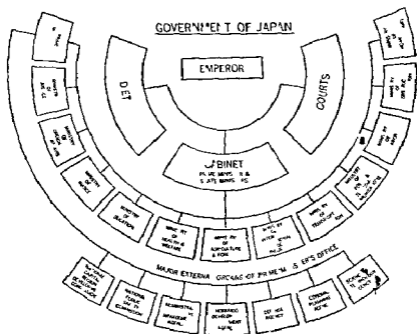
३ मन्त्रिमण्डल का आकार —यद्यपि सविधान के अनुसार जापानी मन्त्रिमण्डल के सदस्यो की कोई सख्या निर्धारित नही की गई है, परन्तु मार्च सन् १९६५ मे उसमे प्रधानमन्त्री तथा १६ अन्य मन्त्री थे जिनमे १२ मन्त्री विभिन्न विभागो के अध्यक्ष और ४ राज्यस्तर के मन्त्री थे। उनके अतिरिक्त एक मन्त्रिमण्डल का प्रधान सचिव भी था मन्त्रालय मे निम्न विभाग थे —

3 Under the constitution of 1947 the Japanese Government comes very close to that of great Britain in operation, if not so much in theory It has supreme control of the national executive in accordance with the policy set forth by the diet At least in its constitutional frame work, Japan has been provided with responsible government C, Yanaga *Japanese People and politics* P 146

4 *The statesman's year Book, 1965–66 P 1180

(१) न्याय विभाग (Judiciary),
(२) वैदेशिक विभाग (Foreign Affairs)
(३) वित्त विभाग (Finance)
(४) स्वास्थ्य तथा जन कल्याण (Health and welfare),
(५) कृषि एवं वन विभाग (Agriculture and Forestry)
(६) वाणिज्य तथा उद्योग विभाग (Trade and Industry)
(७) परिवहन विभाग (Transport)
(८) शिक्षा, विज्ञान एवं तकनीकी तथा अणुशक्ति (Education, Science and Technology and Atomic Energy),
(९) डाक सेवा विभाग (Postal Services),
(१०) श्रम विभाग (Labour)
(११) निर्माण विभाग (Construction) तथा
(१२) गृह तथा सार्वजनिक सुरक्षा (Home Affairs and Public safety)।

राज्य स्तर के मन्त्रियों के अधीन —

(१) प्रशासनीय प्रबन्ध (Administrative Management)
(२) ओलम्पिक खेल कूद (Olympic Games),
(३) सुरक्षा (Defence Agency) तथा
(४) आर्थिक नियोजन (Economic Planning) रखे गये।

४ मन्त्रिमण्डल के अधिकार तथा शक्तियां —मन्त्रिमण्डल का महत्व बतलाते हुए लेखकों ने ब्रिटिश मन्त्रिमण्डल के सम्बन्ध में कुछ उक्तियां कही हैं, जो जापान के मन्त्रिमण्डल पर भी लागू होती हैं, क्योंकि जापान में भी ब्रिटेन की भांति ही उत्तरदायी शासन व्यवस्था है। ग्लैडस्टोन लिखता है कि मन्त्रिमण्डल "वह सूर्य पिण्ड है जिसके चारों ओर अन्य पिण्ड घूमते हैं।"[5] बेजहाट के शब्दों में "मन्त्रिमण्डल एक हाइफन है, जो जोड़ता है एक बकसुआ है, जो राज्य के कार्यपालिका विभाग को व्यवस्थापिका विभाग से जकड़ देता है।"[6] लॉवेल के अनुसार मन्त्रिमण्डल "राजनीतिक वृत्त खण्ड के महराब के बीच की मुख्य शिला

5 *' The solar orbit round which other bodies revolve " —Glodstone

6 "A combining hyphen which joins, a buckle which fastens the legislative part of the state with the executive part" — Baghot

है ।"[7] रामजे म्योर बतलाता है कि "मन्त्रिमण्डल, संक्षेप मे, राज्य के जलयान का परिचालक चक्र है ।"[8] सर जॉन मैरियट के अनुसार मन्त्रिमण्डल 'वह धुरी है जिस पर समस्त प्रशासन चक्र घूमता रहता है।"[9] एमरी लिखता है कि मन्त्रिमण्डल "सरकार का केन्द्रीय निर्देशक यन्त्र है।"[10]

(i) व्यवस्थापन क्षेत्र—मन्त्रिमण्डल के प्रमुख कार्य तथा शक्तियां व्यवस्थापन त्र मे है । उसका यह दायित्व है कि वह ससद सम्बन्धी सभी कार्यक्रमो को निश्चित करे। मन्त्रिमण्डल क परामर्श पर ही सम्राट ससद को आहूत करता है तथा प्रतिनिधि सदन को भग करता है, और उसी के निश्चयानुसार सामान्य निर्वाचन (General Election) की घोषणा करता है और विशेष अधिवेशन बुलाता है । बहुमत का समर्थन प्राप्त होने से, मन्त्रिमण्डल सभी विधायिनी शक्तियो का स्रोत है । ससद मे प्रस्तुत किये ज नेवाले सरकारी कानूनो का प्रारूप तैयार करना, ससद मे उन्हे प्रस्तुत एव सचालित करना तथा ससद द्वारा पारित कराने का दायित्व भी उसी पर है । उसकी इच्छा के विरुद्ध ससद कोई कानून पारित नही कर सकती । यदि मन्त्रिमण्डल के विधेयको मे कभी कोई सशोधन किये जाते हैं तो तभी किये जाते हैं जब वे उसको मान्य होते हैं । गैर सरकारी विधेयक भी तभी पास हो सकते हैं जब कि वे मन्त्रिमण्डल को मान्य हो । कानूनो के निर्मित होने के पश्चात् केबिनेट उन्हे लागू करती है । कानून से सम्बन्धित प्रशासन व आज्ञाएँ भी उसी के द्वारा दी जाती हैं । सक्षेप मे, सिद्धान्त रूप से भले ही ससद कानून निर्मात्री सभा कहलावे, परन्तु वास्तव मे विधि निर्माण सम्बन्धी सभी कार्य मन्त्रिमण्डल के आधीन हैं, और वही उन पर छाया रहता है । वस्तुत यवस्थापन क्षेत्र मे वह ससद का नेतृत्व करती है ।

(ii) कार्यपालन क्षेत्र—मन्त्रिमण्डल प्रधानत प्रशासन का कार्यपालक अग है । अत इस क्षेत्र मे उसके कार्य अत्यन्त व्यापक तथा विस्तृत हैं । मन्त्रिमण्डल देश की एक विचारशील तथा नीति निर्धारक निकाय है । वह सभी राष्ट्रीय एव अन्तर्राष्ट्रीय समस्याओ पर विचार कर नीति निर्धारित करता, ससद द्वारा स्वीकृत कराता तथा उन्हे मूर्त रूप देता है । ससद नीतियो को स्वीकार अवश्य करती है, परन्तु उनका निर्धारण मन्त्रिमण्डल द्वारा ही किया जाता है । यह उसका कर्तव्य

---

7 The key-stone of the political arch" Lowell

8 The cabinet, in short is the steering wheel of the ship of the state" —Ramsay Muir

9 The pivot round which whole political machinary revolves —Sir John Marriott

10 The central directing instrument of government" Amery

है कि वह विभिन्न प्रशासनीय विभागो का निरीक्षण करे, उनका सचालन करे, उन पर नियन्त्रण रखे तथा उनके कार्यों मे सामञ्जस्य बनाये रखे। ससद मे प्रशासन से सम्बन्धित जो प्रश्न पूछे जाते हैं, वह उनका उत्तर देता है। लोक सेवा पर नियन्त्रण रखना भी उसी का काम है।

(iii) वित्तीय क्षेत्र—वित्तीय क्षेत्र मे भी मन्त्रिमण्डल के अधिकार बडे महत्वपूर्ण हैं। यद्यपि यह कहना कि धन जनता का है और जनता ही उसको व्यय करने का अधिकार रखती है, सर्वथा ठीक है, परन्तु वास्तविक रूप से वार्षिक बजट का तैयार करना तथा ससद के सम्मुख प्रस्तुत करना मन्त्रिमण्डल का काम है। सिद्धान्त रूप से ससद उसे पारित करती है, जिसके अनुसार मन्त्रिमण्डल उसका उपयोग करता है। मन्त्रिमण्डल ही राज्य के समस्त व्यय के लिये उत्तरदायी है और वही व्यय की पूर्ति के लिये आय के स्रोत जुटाता है। ससद मन्त्रिमण्डल द्वारा प्रस्तावित बजट मे केवल कमी कर सकता है, वृद्धि नही। जब ससद के सदस्यो द्वारा कटौती प्रस्ताव पेश किये जाते हैं तब सरकारी पक्ष की रक्षा करना भी उसका विशेष उत्तरदायित्व होता है। यदि वर्ष के मध्य मे ऐसे व्यय की आवश्यकता पडे, जो वार्षिक बजट मे ससद द्वारा स्वीकृत न हो, तो वह उसके व्यय की प्रारक्षित निधि से (Reserved fund) आज्ञा देता है और ससद के आगामी अधिवेशन म उस पर स्वीकृति प्राप्त कर लेता है।

(iv) न्यायिक क्षेत्र—न्यायिक क्षेत्र मे भी मन्त्रिमण्डल का महत्व उल्लेखनीय है। वह मुख्यन्यायाधीश को मनोनीत तथा अन्य न्यायाधीशो को नियुक्त करता है। सामान्य क्षमादान, विशिष्ट क्षमादान, दण्ड को कम करना, मृत्यु दण्ड की रोक और छीने हुए अधिकारो को पुन प्रतिष्ठित करने का अधिकार मन्त्रिमण्डल पर है।

निष्कर्षत व्यवस्थापन तथा कार्यपालन क्षेत्र मे मन्त्रिमण्डल का शीर्षस्थान है। वित्तीयक्षेत्र मे भी उसका नियन्त्रण कम महत्वपूर्ण नही होता। वस्तुत वह एक ऐसी धुरी है जिसके चारो ओर समस्त प्रशासन यन्त्र घूमता रहता है।

(v) सम्राट के परामर्श दाता के रूप मे—जैसा कि पहले बताया जा चुका है, प्राचीन सविधान के अनुसार केबिनेट सम्राट को प्रशासनिक कार्यो मे परामर्श देती थी और उसके लिये उत्तरदायी भी थी। केबिनट के अतिरिक्त परामर्श देने के लिये प्रिवी कौंसिल तथा जेनरो आदि अन्य परिषदें भी थी, जिससे इसका कार्य अधिक सीमित था। नूतन सविधान के आरम्भ होने पर ये प्राचीन सस्थायें समाप्त हो गई और अब इस कार्य के लिये केबिनेट ही एक मात्र सस्था है। धारा 3 के अनुसार सम्राट के सभी कार्यो पर केबिनेट का परामर्श अनिवार्य रखा गया है और उनके लिये वह ससद के प्रति उत्तरदायी होती है। इन कार्यो का उल्लेख व्यवस्थापन क्षेत्र

के अन्तर्गत किया जा चुका है। उनमे प्रमुख हैं—सम्मान वितरण, ससद का सत्रा-मन्त्रण, प्रतिनिधि सदन का विघटन, सामान्य निर्वाचन की घोषणा, सामान्य तथा विशिष्ट क्षमादान आदि।

५ **मन्त्रिमण्डल की बैठकें**—राष्ट्रीय तथा वैदेशिक प्रश्नो पर नीति निर्धारण करने के लिये जापान मे मन्त्रियो की बैठकें सप्ताह मे दो बार मगलवार तथा शुक्रवार को होती है। प्राय ये बैठकें प्रधानमन्त्रि के सरकारी निवास पर होती है। इन बैठको मे गण पूर्ति का कोई प्रश्न नही उठता। साधारणतया बैठको मे मन्त्रिमण्डल के सभी सदस्य उपस्थित रहते हैं परन्तु कार्य की प्रधानता देखते हुए आधे से कम व्यक्तियो के होने पर भी निर्णय ले लिय जाते हैं। जापान मे अब यह परम्परा बन गई है कि मन्त्रिमण्डल की बैठको मे केबिनेट सचिवालय का निर्देशक, उपनिर्देशक तथा कानून के ब्यूरो का निर्देशक भी उपस्थित होते है, किन्तु वे मतदान के अधिकारी नही हाते। कभी-कभी उपमन्त्री भी बुला लिये जाते हैं किन्तु वे भी मतदान के अधिकारी नहीं होते। बैठको का सभापतित्व प्रधानमन्त्री करता है। विचार विमर्श के बाद निर्णय लिये जाते है, जो अधिकाशत सर्व सम्मति पर आधारित होते हैं क्योकि जापान मे सामुहिक उत्तरदायित्व है। यदि कभी मन्त्रियो मे मतभेद उत्पन्न हो जाता है तो प्रधानमन्त्री की मध्यस्थता द्वारा वह अविलम्ब दूर कर दिया जाता है। निर्णयो मे प्रधानमन्त्री का ही सर्वोपरि हाथ रहता है। यदि कोई मन्त्री प्रधानमन्त्री के विचारो से सहमत नही होता, तो उसे अपने पद से त्यागपत्र देना पडता है। वर्तमान सविधान के लागू होने के अनन्तर कई बार ऐसी स्थिति आ चुकी है। बैठकें गोपनीय होती हैं, और उनके निर्णय भी गुप्त रखे जाते हैं।

६—**प्रधानमन्त्री**—पूर्वगामी सविधान मे प्रधानमन्त्री का पद गौण था, क्योकि शक्तियो का केन्द्र-बिन्दु सम्राट था, प्रधानमन्त्री नही। इसलिये उसमे प्रधानमन्त्री के सम्बन्ध मे कोई विशेष उल्लेख नही मिलता। केवल अनुच्छेद ४५ मे राजमन्त्रियो की स्थिति पर प्रकाश डाला गया है जिससे स्पष्ट है कि जापान मे केबिनेट तो थी, किन्तु उत्तरदायी शासन प्रणाली न थी। मन्त्रिमण्डल प्रणाली मे प्रधानमन्त्री का स्थान प्रमुख होता है, क्योकि अन्य सभी मन्त्री उसके अधीन होते है और उसी के नेतृत्व मे काय करते हैं। प्रधानमन्त्री का यह दायित्व होता है कि वह मन्त्रियो के बीच आई हुई विषमता को दूर कर उनमे एकता स्थापित करे। इसलिए मन्त्रियों की नियुक्ति तथा पृथक्करण सम्बन्धी अनेक अधिकार प्रधान-मन्त्री को दिये जाते हैं। प्राचीन सविधान इन बातो के सम्बन्ध मे कुछ नहीं बतलाता।

नूतन सविधान ने जापान मे उत्तरदायी शासन प्रणाली का प्रचलन किया

है जिस कारण प्रधानमन्त्री की स्थिति, शक्ति एवम् अधिकारो का उसमे विस्तृत वर्णन किया गया है। इसके अनुसार सर्वप्रथम प्रधानमन्त्री का नाम ससद के प्रस्ताव द्वारा निश्चित किया जाता है। तदुपरान्त उसकी नियुक्ति औपचारिक रूप से सम्राट द्वारा की जाती है। सविधान ने प्रधानमन्त्री पद के लिये केवल दो अर्हतायें बतलाई है-प्रथम तो यह कि वह ससद का सदस्य हो, दूसरे, वह असैनिक हो। ससदीय प्रणाली का प्रचलन करते हुए भी सविधान निर्माताओ ने यह नही लिखा, कि वह निम्न सदन के बहुमत-दल का नेता होगा। अत वह सभद के किसी भी सदन का सदस्य हो सकता है, परन्तु जब उसका नाम ससद द्वारा प्रस्तावित किया जावे और दोनो सदनो मे नामचयन पर मतभेद हो, तब निम्न सदन का निर्णय ही ससद का निर्णय मान लिया जाता है। अत यह निश्चित है कि प्रधानमन्त्री निम्न सदन का ही सदस्य होगा। निम्न सदन के सदस्य होने के अतिरिक्त, इससे यह भी सिद्ध हो जाता है कि वह अनिवार्य रूप से बहुमत दल का नेता भी होगा। यदि सयुक्त मन्त्रिमण्डल बनाने की आवश्यकता पडे, तो वह सभी दलो का विश्वासपात्र होना चाहिए।

यह तो हुई उसकी सवैधानिक योग्यताए। इनके साथ-साथ उसमे कुछ व्यक्तिगत गुणो का होना भी अत्यन्त आवश्यक होता है। विद्वानो ने ब्रिटिश प्रधानमन्त्री के लिये कुछ योग्यताओ का उल्लेख किया है. वे योग्यताए जापानी प्रधानमन्त्री के सम्बन्ध मे भी ठीक प्रतीत होती हैं। मुनरो लिखता है कि "ब्रिटेन के प्रधान मन्त्री प्राय कुलीन, सुशिक्षित एव सम्पन्न होते है। वे अल्पायु मे ही राजनीति मे प्रवेश करते हैं, और उसे अपना व्यवसाय बना लेते है।" धगर पिट ने लिखा है कि प्रधानमन्त्री में "प्रथम वक्तृत्व शक्ति, द्वितीय ज्ञान, तृतीय परिश्रम तथा अन्त मे धैर्य" होना चाहिये। फाइनर लिखता है कि "उससे प्रधान ये गुण होने चाहिए-सभी खतरो के प्रति जागरूकता, उसने पलायन करने वाला नही, सभी वृहत ज्ञान और दक्षता, अधिक विशिष्टता या अज्ञानता नही; तुरन्त एव स्थिर आकुलता तथा उत्साह की क्षमता अकर्मण्यता नही।"

सक्षेप मे, शिक्षित, सहनशील, परिश्रमी, विवेकशील, कुशल राजनीतिज्ञ, दूरदर्शी, विश्वसनीय और ओजस्वी वक्ता होने पर वह अधिक लोकप्रिय बन जाता है।

७. प्रधानमन्त्री की शक्तियो के स्त्रोत—प्रधानमन्त्री की शक्तियो के दो मुख्य स्त्रोत हैं—(१) सवैधानिक विधि तथा (२) संसदीय प्रणाली।

(१) सवैधानिक विधि :—जापानी सविधान बतलाता है कि प्रधानमन्त्री मन्त्रिमण्डल का अध्यक्ष होता है और अध्यक्ष के रूप मे कार्य करते हुए वह प्रशासन की विभिन्न शाखाओ पर निरीक्षण तथा नियन्त्रण रखता है। साथ ही उसके कुछ

विशिष्ट कर्त्तव्यों का भी उल्लेख किया गया है—जैसे, राजमन्त्रियों की नियुक्त एवं पदच्युत करना, संसद के समक्ष राष्ट्रीय कार्यों एवं परराष्ट्रीय सम्बन्धों पर प्रतिवेदन प्रस्तुत करना आदि।

(२) **संसदीय प्रणाली**—प्रधानमन्त्री की शक्ति का दूसरा स्रोत वहां की संसद है। बहुमत दल का नेता होने के कारण जब तक उसे बहुमत का समर्थन प्राप्त रहता है, वह अनियन्त्रित रूप से प्रशासन करता है। सामूहिक उत्तरदायित्व होने से अन्य मन्त्रियों का भाग्य भी उससे बंधा रहता है। अत वे सभी इसके कृत्यों का पूर्ण रूपेण समर्थन करते हैं।

८. **प्रधानमन्त्री के कार्य**—ब्रिटिश प्रधानमन्त्री की शक्ति का उल्लेख करते हुए एक बार ग्लेडस्टोन ने बतलाया था कि, "कहीं भी इतने छोटे पदार्थ ने इतनी अधिक छाया नहीं दी है" (No where has so small a substance cast so large a shadow)" जापान के प्रधानमन्त्री के विषय में भी यह उक्ति कही जा सकती है। उसके अधिकारों एवं कार्यों का विवेचन निम्न शीर्षकों में किया जाता है —

(१) **प्रधानमन्त्री तथा मन्त्रि-परिषद्**—प्रधानमन्त्री वह केन्द्र है जिस पर उसके सभी मन्त्रियों का जीवन एवं मरण निर्भर करता है। मन्त्रिमण्डल का निर्माण, सञ्चालन तथा अन्त, सबका सबन्ध उसके व्यक्तित्व पर आधारित है। मन्त्री पद संभालने के अनन्तर, उसका पहला कर्त्तव्य होता है, मंत्रियों का चयन कर मन्त्रिमण्डल का निर्माण करना। ब्रिटेन में मन्त्रियों की नियुक्ति प्राविधिक रूप से वहां के राजा द्वारा होती है, प्रधानमन्त्री केवल अपने साथियों का नाम चयन करता है। जापान में संविधान की धारा ६८ के अनुसार प्रधानमन्त्री स्वयं उनकी नियुक्ति करता है, सम्राट नहीं। इसका अभिप्राय यह हुआ कि मन्त्रिमण्डल के निर्माण में वह पूर्ण रूपण स्वतन्त्र है। *किस व्यक्ति को मण्डल में लेना चाहिये और* किसको नहीं, इसका निर्णय वह स्वयं ही करता है, परन्तु व्यवहार में वह मनमानी नहीं कर सकता। सर्वप्रथम उसको यह देखना पड़ता है कि उसके मण्डल में उसके दल के सभी विशिष्ट सदस्यों का उचित स्थान मिल जावे। यदि वह इस पर विचार नहीं करता है तो दल में दरार पड जावेगी और एकता नष्ट हो जावेगी। कभी-कभी तो उसको ऐसे सदस्यों को भी स्थान देना पड़ता है, जिनको वह हृदय से लेना नहीं चाहता। लेकिन दल के संगठन, निर्वाचन में दिये गये सहयोग तथा दल के अन्य नेताओं के दबाव के कारण उसे ऐसा करना अनिवार्य हो जाता है। कभी-कभी कुछ व्यक्ति केवल इसी शर्त पर मन्त्रिमण्डल में सम्मिलित होने की स्वीकृति देते हैं कि उनके मित्र भी उसमें सम्मिलित कर लिये जाएं। कुछ व्यक्ति तो विशेष विभाग मिलने की प्रत्याभूति पर ही उसमें शामिल होते हैं। इससे स्पष्ट है

कि मन्त्रियों का चयन करते समय प्रधानमन्त्री को अपने साथियों से एक प्रकार का समझौता करना पड़ता है। मण्डल निर्माण करते समय प्रधानमन्त्री को यह भी देखना पड़ता है कि उसके साथी सहयोगपूर्ण कार्य करने की प्रवृत्ति रखते हैं अथवा नहीं। यदि उसके साथी उसे सहयोग न दें, तो उसका कार्य बड़ा कठिन हो जाता है। इन बातों के अतिरिक्त उसे भौगोलिक क्षेत्रों, सामाजिक, आर्थिक तथा धार्मिक पहलुओं पर भी विचार करना पड़ता है।

मन्त्रिमण्डल के गठन के पश्चात् प्रधान मन्त्री को यह देखना पड़ता है कि उसके मण्डल का कार्य सुचारु रूप से चले, क्योंकि वह उसका केवल जनक ही नहीं होता, वरन् उसका गति प्रदायक भी होता है। मन्त्रियों के बीच विभागों का वितरण करना उसका दूसरा प्रमुख कार्य है। प्रधानमन्त्री का यह कर्त्तव्य है कि वह यह देखे कि प्रत्येक मन्त्री अपने अपने विभागीय कार्य को ठीक प्रकार से करता है या नहीं। प्रशासन का अध्यक्ष होने के नाते, वह विभागों का निरीक्षण करता है तथा मन्त्रियों के बीच उत्पन्न होने वाले मतभेद को दूर कर उन्हें एक सूत्र में बांधता है। इस प्रकार वह मन्त्रिमण्डल के जीवन को गतिशील एवं सौहार्द्रपूर्ण बनाता है।

प्रधानमन्त्री मन्त्रिमण्डल को जन्म देकर उसका पालन ही नहीं करता अपितु आवश्यकता पड़ने पर उसका संहार भी करता है। धारा ६८ ने उसको मन्त्रियों के नियुक्त तथा पृथक करने की विशेष शक्तियां दी हैं। पृथक करने का अवसर तब आता है, जब कोई मन्त्री अपने कार्य में सफल सिद्ध नहीं होता अथवा उसका प्रधानमन्त्री से गहरा मतभेद स्पष्ट हो जाता है। ऐसी दशा में प्रधानमन्त्री का अधिकार है कि वह मन्त्री को त्याग पत्र देने के लिये बाध्य कर सके, और न देने की स्थिति में उसे पृथक भी कर दे। इसका अभिप्राय यह नहीं कि प्रधानमन्त्री अपने मन्त्रिमण्डल का अधिनायक होता है अथवा अपनी स्थिति से कोई अनुचित लाभ उठा सकता है। उसका यह दायित्व है कि वह अपने दल की एकता बनाये रखे, परन्तु फिर भी ऐसे अवसर आते ही रहते हैं जब कि परस्पर विरोध उत्पन्न हो जाता है और प्रधानमन्त्री उसे दूर नहीं कर पाता। दूसरे, सभी मन्त्रियों का भविष्य उसके साथ बंधा रहता है। यदि प्रतिनिधि सदन किसी एक मन्त्री के *विरुद्ध अविश्वास का प्रस्ताव पारित कर दे, तो सभी मन्त्रियों को प्रधानमन्त्री सहित* अपने पदों से त्यागपत्र देना पड़ता है। इसलिये यह कहना नितान्त समीचीन है कि सभी मन्त्री साथ साथ तैरते और साथ-साथ डूबते हैं। प्रधानमन्त्री के त्याग-पत्र देते ही समस्त मन्त्रिमण्डल भंग हो जाता है।

अतः स्पष्ट है कि मन्त्रिमण्डल का निर्माण, संचालन तथा
मन्त्री के हाथ में है।

(२) प्रधानमन्त्री और संसद—प्रधानमन्त्री की वास्तविक स्थिति संसद के समर्थन पर निर्भर करती है। वह प्रतिनिधि सदन का नेता होता है। जिस सदन का वह सदस्य नहीं होता उस सदन में वह एक नेता नियुक्त कर देता है, जो उसमें उसका प्रतिनिधित्व करता है। इस प्रकार दोनों सदनों के संचालन में प्रधानमन्त्री नेतृत्व प्रदान करता है। सभी सरकारी विधेयक उसके निरीक्षण तथा निर्देशन में तैयार किये जाते हैं। यही कारण है कि संसद उन्हें अस्वीकार नहीं कर पाती। वार्षिक बजट तैयार कराने में भी उसका प्रमुख हाथ रहता है, जिसके परिणामस्वरूप उसकी स्वीकृति में भी संसद कोई बाधा उपस्थित नहीं करती। गृह तथा विदेश नीति निर्धारण में संसद की स्वीकृति लेना अनिवार्य होता है। इस समय विरोधी दल उसका बड़ा विरोध करते हैं। कभी-कभी तो वादविवाद इतने कटु हो जाते हैं कि प्रधानमन्त्री को संसद की नब्ज टटोलनी पड़ती है, परन्तु विश्वासपात्र होने के कारण उसे इन कार्यों में भी अधिक कठिनाई नहीं होती। यदि उसका नेतृत्व दोष पूर्ण होता है तो वह शीघ्र संसद का समर्थन खो बैठता है।

संसद से सम्बन्धित प्रधानमन्त्री की दूसरी शक्ति प्रतिनिधि सदन को भंग करने की है। सिद्धान्तत यह अधिकार वहां के सम्राट का है, परन्तु वास्तव में इसका प्रयोग प्रधानमन्त्री के परामर्श पर ही किया जा सकता है। प्रधानमन्त्री के हाथ में यह ऐसा तेज हथियार है जिससे संसद सदैव ही भयभीत रहती है। यदि कभी इस कार्य के लिये प्रधानमन्त्री सम्राट से अनुरोध करे तो वह अनसुनी नहीं कर सकता।

९ प्रधानमन्त्री की स्थिति का मूल्यांकन—उपर्युक्त वर्णन से स्पष्ट है कि प्रधानमन्त्री की स्थिति बड़ी महत्वपूर्ण है। लार्ड मार्ले ने ब्रिटिश प्रधानमन्त्री को अपने "समकक्षों में प्रथम"[11] बतलाया है। उसका मत है कि, "यद्यपि मन्त्रिमण्डल में सभी मन्त्रियों का स्थान सामान्यत एकसा होता है सभी समान अधिकार से बोलते हैं और ऐसे अवसर कम आते हैं, जब उनके मत लिये जाते हैं—उनके मत समानता पर आधारित "एक व्यक्ति एक मत" के सिद्धान्त पर गिने जाते हैं, फिर भी वह अपने समान पद वाले सहयोगियों में प्रथम होता है। और जब तक वह अपने पद पर आसीन रहता है, वह असाधारण स्थिति तथा आधार सत्ता का प्रयोग करता है।"[12] जापान के प्रधानमन्त्री की स्थिति इससे भी कहीं अधिक

11 "First among equals"–*Morley*

12 "Although in cabinet all its members stand on equal footing, speak with equal voice, and on rare occasions when a decision is taken votes are counted on the fraternal principle of 'One man one vote,' yet the head of the cabinet is primus interpares, and *occupies a position which, so long as it lasts, is one of its exceptional and peculiar authority.* Ibid

है। मन्त्रियो के नियुक्त तथा पृथक करने की सर्वंधानिक शक्ति प्राप्त होने से उसकी स्थिति इतनी सुदृढ हो गई है कि उसे नि सकोच एक ऐसा सूर्य कहा जा सकता है जिसके चारो ओर मन्त्री रूपी नक्षत्र परिक्रमा करते हैं।[13] उसे मन्त्रीगण रूपी तारो के बीच चन्द्रमा कहना भी युक्ति सगत होगा।[14]

वस्तुत जापानी प्रधानमन्त्री मन्त्रिमण्डल वृत्त के मध्य का प्रस्तर खण्ड,[15] ससद का नेता, शासन की धुरी और राज्य नौका का खेवट है।

---

13 'He is, rather as sun around which planets revolve—Jennings
14 'Interstellas luna minors —sir willam Harcourt
15 'Key stone of the cabinet arch —Gladstone

7.

संसद
(Diet)

१ डाइट का प्रारभिक इतिहास—जापान मे प्रथम ससद का निर्माण सन् १८९० मे हुआ। अत समस्त एशिया महाद्वीप मे यह पहला राष्ट्र है जिसके ससदीय प्रशासन का इतिहास इतना लम्बा है।[1] मेइजी सविधान के अन्तर्गत बुलाई गई पहली ससद मे १८९० से १९४६ तक कार्य किया। इस ससद मे दो सदन थे—सरदार सदन (House of Peers) तथा प्रतिनिधि सदन (House of Representatives)

सरदार सदन एक स्थायी सदन था, जिसकी सदस्य सख्या प्रारम्भ मे ३०० थी किन्तु बढते-बढते अन्त मे लगभग ४०० हो गई। इसके अधिकाश सदस्य राजवश तथा मार्किस (Marquis), काउन्ट, (Count) एवम् बैरन (Baron) वर्गों से लिए जाते थे। इनके अतिरिक्त कुछ ऐसे भी सदस्य होते थे जो राज्य को सबसे अधिक कर देते थे और कुछ अपनी विशिष्ट सेवा अथवा योग्यता के कारण सम्राट द्वारा मनोनीत किए जाते थे।

अधिकारों की दृष्टि से सरदार सदन को उतनी ही शक्तियाँ प्राप्त थी, जितनी कि प्रतिनिधि सदन को। विचारो से वह अनुदार तथा रूढिवादी था। वह न तो स्वय किसी परिवर्तन को प्रोत्साहित करता था और न निम्न सदन को ही करने देता था। फलस्वरूप वह अपने सम्पूर्ण ५६ वर्ष के जीवन काल मे कभी भी लोकप्रिय न हो सका।

प्रतिनिधि सदन लोकप्रिय सदन था, जिसके सदस्य जनता द्वारा निर्वाचित किए जाते थे। प्रारम्भ मे उसमे ३०० सदस्य रखे गए थे, जो ४ वर्ष के लिए निर्वाचित किए गए थे। मतदान अधिकार उन्ही व्यक्तियो को दिया गया था जो सरकार को कम से कम पन्द्रह येन वार्षिक प्रत्यक्ष कर देते थे। शनै शनै, मताधिकार व कर देने की सीमा को घटाया गया। सन् १९०० मे यह सीमा घटाकर १० येन करदी गई और १९१९ मे ३ येन। सन् १९२५ मे इसे पूर्णत समाप्त कर दिया गया और सभी वयस्क पुरुषो को मत धिकार दे दिया गया चाहे वे सरकार को

1. 'Japan has the longest histosy of Parliament Government in all of Asia"
G M. Kahin. Major Goverments of Asia. P. 170

कोई कर देते थे अथवा नही । इसके परिणाम स्वरूप इस सदन की सदस्य सख्या बढकर ४६६ हो गई ।[2]

सदस्यो का निर्वाचन प्रत्यक्ष तथा गुप्त मतदान द्वारा होता था। साधारणत इस सदन को वर्ष मे एक बार सम्राट द्वारा बुलाया जाता था, परन्तु आवश्यकता पडने पर इसके विशेष अधिवेशन भी बुलाये जा सकते थे । इस सदन का सत्रावसान तथा विघटन सम्राट के आधीन था। इसके विघटित होने पर पाँच मास के भीतर नवीन सदन को निर्वाचित करना पडता था ।

सम्राट तथा दोनो सदनो की स्वीकृति प्राप्त किए बिना कोई विधेयक अधिनियम नही बन सकता था। गतिरोध (Deadlock) उत्पन्न होने की स्थिति मे विधेयक को एक समिति के पास भेजा जाता था, जिसमे दोनो सदनो से बराबर सख्या मे सदस्य लिए जाते थे । इस सविधान के अनुसार सरकार आपातकाल मे अध्यादेश जारी कर सकती थी, किन्तु ससद के आगामी अधिवेशन मे उन पर स्वीकृति लेनी पडती थी। ससद से स्वीकृति न मिलने पर वे समाप्त हो जाते थे। सविधान मे सशोधन करने के लिए भी ससद की स्वीकृति आवश्यक थी, किन्तु इस सविधान के समाप्त होने तक इसमे कोई सशोधन नही हुआ ।[3]

वित्तीय क्षेत्र मे ससद को बडे सीमित अधिकार दिए गए थे। बजट मे ऐसी अनेक मदें होती थी जिन पर ससद की स्वीकृति आवश्यक न थी । मन्त्री भी ससद के प्रति उत्तरदायी न थे, यद्यपि व्यवहारिक दृष्टि से वह उन्हे त्यागपत्र देने को बाध्य कर सकती थी।

आइक (Ike) के शब्दो मे यह एक परामर्शदात्री सभा थी जो कार्यपालिका के कृत्यो पर रोक लगाने का प्रयास तो करती थी, किन्तु इसके प्रयास बहुधा विफल ही रहते थे। इसका प्रमुख कार्य केवल जनमत को व्यक्त करना था।[4]

२ नवीन ससद का सगठन—वर्तमान सविधान के चौथे अध्याय मे ससद के सगठन, अधिकार और कार्यों का वर्णन दिया गया है। इसके अनुसार देश की विधि निर्मात्री सस्था का नाम डाइट (Diet) रखा गया है, जिसमे दो सदन हैं—क—प्रतिनिधि सदन (House of Representatives or Shugi in) और ख—समासद् सदन (House of Councillors or Sangi in) ।

2 Ibid P 171
3. Ibid p 172
4 The pre war Imperial Diet was Fundamentally an advisary body which tried to check but often unsuccessfully the actions of the executive One of its primary functions was to act as a kind of sounding board for public opinion
N Ike'— Japanese Politics P. 68

क—(i) प्रतिनिधि सदन की रचना—प्रतिनिधि सदन जापान की ससद का लोकप्रिय एव निम्न सदन है। सविधान सदन की सदस्य सख्या निश्चित नही करता। उसे विधि द्वारा निश्चित किया गया है। १९५४ से पूर्व उसमे केवल ४६६ सदस्य थे किन्तु अमामी ओशिमा (Amami Oshima) के पुन प्राप्त होने से इस सदन मे वृद्धि हो गई। वर्तमान समय मे ४६७ सदस्य हैं।

(ii) मतदाताओ के लिये अर्हतायें—सविधान की धारा ४४ मे कहा गया है कि निर्वाचको की योग्यताए विधि द्वारा निर्धारित की जावेंगी, तथापि जाति, धर्म लिङ्ग सामाजिक स्तर, वश परम्परा, शिक्षा, सम्पत्ति अथवा आमदनी के आधार पर उनमे कोई विभेद नही किया जावेगा। विधि द्वारा निर्धारित योग्यताओ के अनुसार आजकल जापान मे ससद सदस्यो का निर्वाचन सर्वव्यापी वयस्क मताधिकार के सिद्धान्त पर किया जाता है। देश के प्रत्येक नागरिक को स्त्री हो या पुरुष मत देने का समान अधिकार दिया गया है, किन्तु उसकी आयु २० वर्ष से कम नही होनी चाहिए और वह अपने निर्वाचन क्षेत्र मे कम से कम तीन मास से रह रहा हो। आजकल जापान के प्राय शतप्रतिशत व्यक्ति साक्षर हैं। अत साक्षरता सम्बन्धी कोई योग्यता नही रखी गई है। मतदाता का यह दायित्व है कि वह अपना नाम निर्वाचको की सूची मे लिखा दे। यह सूची प्रतिवर्ष ३१ अक्टूबर से पूर्व तैयार हो जाती है।

विधि द्वारा ऐसे व्यक्तियो को मताधिकार से वञ्चित कर दिया गया है जो सार्वजनिक अथवा वैयक्तिक दान पर जीवन निर्वाह करते हैं अथवा कारावास में दण्ड पाने वाले अपराधी है अथवा जो निर्वाचन सम्बन्धी अपराधो के लिए दण्ड भोग रहे हैं।

(iii) सदस्यो की योग्यता—विधि के अनुसार सदस्यो मे निम्न योग्यताओ का होना अनिवार्य रखा गया है—

१ वह २५ वर्ष की आयु पूरी कर चुका हो,

२ वह देश का निवासी हो, और मतदाताओ की सूची मे उसका नाम अकित हो,

३ वह विक्षिप्त, दण्ड प्राप्त व्यक्ति, सरकारी वकील, न्यायाधीश, पुलिस कर्मचारी तथा किसी स्थानीय सस्था की कार्यपालिका का सदस्य न हो।

धारा ४८ के अनुसार कोई व्यक्ति ससद के दोनो सदनो का एक साथ सदस्य नही बन सकता। इस सदर्भ मे उठने वाले प्रश्नो का निर्णय सदन स्वय करता है। सदन का अधिकार है कि एक प्रस्ताव पारित कर किसी भी सदस्य को सदन की सदस्यता से पृथक करदे, किन्तु ऐसे प्रस्ताव उपस्थित सदस्यो के दो तिहाई सदस्यो द्वारा स्वीकृत होने चाहिए।

(iv) निर्वाचन विधि—निर्वाचन की दृष्टि से समस्त देश को ११८ निर्वाचन क्षेत्रो मे विभक्त किया गया है। प्रत्येक निर्वाचन जिला ३ से ५ तक प्रतिनिधि भज सकता है, किन्तु निर्वाचक का मत केवल एक गिना जाता है। मतदान की प्रक्रिया बडी सरल रखी गई है। मतदान प्रत्यक्ष तथा गुप्त प्रणाली से किया जाता है। मतदाता को मतपत्र पर केवल एक नाम अकित करना पडता है। यह नाम उस उम्मीदवार का होता है जिसके लिए वह मत देना चाहता है। मतदान के अनन्तर मतो की गणना की जाती है। जब कभी किसी उम्मीदवार की मृत्यु होने से अथवा त्यागपत्र देने से ससद का कोई स्थान रिक्त हो, तब उसके लिए फिर से निर्वाचन नहीं कराया जाता, प्रत्युत पहले निर्वाचन मे द्वितीय स्थान पाने वाले उम्मीदवार को ही निर्वाचित घोषित कर दिया जाता है। यहा पर सदस्यो के पुन निर्वाचन पर कोई प्रतिबध नही है। यदि जनता निर्वाचित करती रहे, तो व जीवन भर ससद के सदस्य बने रह सकते है।

(v) कार्यकाल—धारा ४५ के अनुसार प्रतिनिधि सदन का कार्यकाल ४ वर्ष रखा गया है, किन्तु उसे समय से पूर्व भी प्रधानमन्त्री के परामर्श पर सम्राट द्वारा भग किया जा सकता है। सदन के भग होने पर अथवा उसकी अवधि पूर्ण हो जाने पर आगामी निर्वाचन भग होने की तिथि से ४० दिन के भीतर सम्पन्न हो जाना चाहिए और निर्वाचन तिथि से ३० दिन के भीतर नव निर्वाचित ससद का अधिवेशन अनिवार्य रूप से आमन्त्रित होना चाहिए।

साधारण अधिवेशन वर्ष मे एक बार अवश्य आमन्त्रित किए जाते हैं[1] परन्तु ससद के किसी भी सदन की माग पर विशेष अधिवेशन भी बुलाए जा सकते है।

ख (i) सभासद् सदन—सभासद सदन जापान की ससद का उच्च सदन है। देश का सविधान यह नहीं बतलाता कि सदन मे कितने सदस्य होंगे और उनमे कौन कौन सी योग्यताए होंगी। उनका निर्धारण कानून द्वारा किया जाता है। आजकल इस सदन मे २५० सदस्य हैं, जिनमे से १०० सदस्य राष्ट्रीय निर्वाचन क्षेत्रों (Notional Constituencies) से निर्वाचित किए जाते हैं और शेष क्षेत्रीय निर्वाचन क्षेत्रो से (Prefectural Constituencies)।

(ii) सदस्यो की योग्यता—साधारणत दोनो सदनो के सदस्यो की योग्यताए समान ही हैं, किन्तु इस सदन के सदस्य ३० वर्ष से कम आयु वाले नहीं होने चाहिए।

(iii) निर्वाचन विधि—सभासद् सदन के सदस्यों का निर्वाचन निम्न सदन की भाँति वयस्क मताधिकार पर गुप्त एव प्रत्यक्ष मतदान प्रणाली से किया

1. धारा ५२

जाता है। समस्त देश को निर्वाचन क्षेत्रों में विभक्त कर दिया जाता है और प्रत्येक क्षेत्र से एक व्यक्ति निर्वाचित किया जाता है।

(iv) कार्यकाल—सभासद् सदन एक स्थाई सदन है क्योंकि इसके सभी सदस्यों का निर्वाचन एक समय मे नहीं होता। प्रत्येक सदस्य ६ वर्ष के लिये निर्वाचित किया जाता है, परन्तु आधे सदस्य प्रति तीन वर्ष बाद अवकाश ग्रहण करते रहते हैं, और उनके स्थान पर नए सदस्य निर्वाचित किए जाते हैं।

३—संसद के कार्य तथा शक्तियाँ

(१) विधायिनी शक्तियाँ (i) क्षेत्र—विश्व की अन्य व्यवस्थापिका सभाओं की भाँति जापानी संसद राजशक्ति का सर्वोच्च अवयव तथा विधि निर्मात्री सभा है। इसका मुख्य कार्य विधि निर्माण करना है। जापान मे एकात्मक शासन व्यवस्था है। अत जापानी संसद इगलैंड की पार्लियामेंट की भाँति सम्पूर्ण देश के लिये सब विषयो पर विधि निर्माण कर सकती है, तथा बनी हुई विधियों मे संशोधन अथवा परिवर्तन भी कर सकती है। अवित्तीय विषयक संसद के किसी भी सदन मे प्रस्तुत किए जा सकते हैं, किन्तु अधिनियम बनने के लिए वे दोनो सदनो द्वारा पृथक-पृथक रूप से पारित होने चाहिए। यदि निम्न सदन किसी विधेयक को स्वीकार करले, परन्तु उच्च सदन उसे स्वीकार न करे अथवा उसमें ऐसे संशोधन प्रस्तुत करदे जो पहले सदन को ग्राह्य न हो, तो विघ उत्पन्न हो जाता है। ऐसी स्थिति उत्पन्न होने पर, संविधान की धारा ५९ बतलाती है कि विधेयक तभी अधिनियम बन सकेगा जब प्रतिनिधि सदन (निम्न सदन) उसे उपस्थित सदस्यों के दो तिहाई अथवा अधिक मतो से पुन स्वीकार करले। यदि संसद उपर्युक्त गतिरोध दूर करने के लिए इस व्यवस्था को व्यवहृत करना न चाहे, तो इसके लिये एक संयुक्त समिति निर्मित की जाती है जिसमे दोनो सदनो से सदस्य लिये जाते हैं।

धारा ५९ के अनुसार सभासद् सदन का प्रतिनिधि सदन द्वारा पारित विधेयक को अपने निर्णय सहित प्राप्त करने की तिथि से ६० दिन के भीतर लौटाना आवश्यक है, यदि इस अवधि के अन्तर्गत वह उसे न लौटा सके तो यह मान लिया जाता है कि उसने विधेयक को अस्वीकार कर दिया है। ऐसी दशा मे प्रतिनिधि सदन उपर्युक्त विधि से उसे पुन स्वीकृत कर अधिनियम बना सकता है।

(ii) सीमाएँ—विधि निर्माण के क्षेत्र मे संसद पर कोई विशेष उल्लेखनीय प्रतिबन्ध तो नहीं है, किन्तु वह इगलैंड की पार्लियामेंट की भाँति सर्वोच्च विधि निर्मात्री सभा भी नहीं है। इस संदर्भ मे यह स्मरणीय है कि एकात्मक देश होने के कारण इगलैण्ड तथा जापान दोनो देशो मे संसदो के क्षेत्राधिकार समान हैं। दोनों को सम्पूर्ण देश के लिये सभी विषयो पर विधि निर्माण करने का समान अधिकार है, तथा दोनो ही प्राचीन विधियो मे परिवर्तन कर सकती हैं, परन्तु इग-

लैंड की पालियामेंट को विधि के क्षेत्र मे सर्वोच्चता का जो अधिकार प्राप्त है वह जापानी ससद को नही। प्रथम तो इगलैंड मे कोई सविधान नही है जिसके प्रावधानो से पालियामेंट बाध्य हो। यही कारण है कि उसके द्वारा निर्मित विधि सविधान के विरुद्ध नही कही जा सकती, भले ही वह परम्पराओ के विरुद्ध कहलाए। दूसरे, इगलैंड के न्यायालय को न्यायिक पुनरिक्षण का कोई अधिकार नही दिया गया, जिसके आधार पर वह पालियामेंट द्वारा निर्मित विधि को असवैधानिक घोषित कर सके। इसके विपरीत, जापान में सविधान भी है और न्यायिक पुनरिक्षण की व्यवस्था भी। इसलिए जापानी ससद कोई ऐसी विधि निर्मित नही कर सकती जो सविधान की धाराओ के प्रतिकूल हो। यदि उसने कभी ऐसा साहस किया तो वहाँ का सर्वोच्च न्यायालय उसे अप्रभावी घोषित करने की क्षमता रखता है। इस प्रतिबन्ध के अतिरिक्त ससद पर कोई अन्य प्रतिबन्ध नही है।

(२) प्रशासनिक शक्तियाँ—प्रशासन के क्षेत्र मे कार्यपालिका का स्थान विशेष महत्वपूर्ण होता जा रहा है। एक समय था जबकि सरकार शान्ति, सुरक्षा और न्याय के केवल तीन कार्य ही किया करती थी, किन्तु आज उसके कार्यों की सख्या बहुत अधिक बढ गई है। अत उस पर नियन्त्रण रखना परमावश्यक हो गया है। जापानी ससद वहा की कार्यपालिका को निम्न प्रकार से नियन्त्रित करती है—

(i) प्रधानमन्त्री का चयन ससद के दोनो सदनो द्वारा किया जाता है। सम्राट ससद द्वारा मनोनीत व्यक्ति को केवल औपचारिक रूप से नियुक्त करता है।

(ii) प्रधानमन्त्री के अतिरिक्त कैबिनेट के कम से कम आधे सदस्यो का ससद के दोनो सदनो से लिया जाना अनिवार्य है। शेष मन्त्रियो को यद्यपि प्रधानमन्त्री ससद के बाहर से ले सकता है और ऐसा करने का उस पर कोई सवैधानिक प्रतिबन्ध भी नही है किन्तु फिर भी वह मनमानी नही कर सकता। वर्तमान ससद का मन्त्रि-मडल पर इतना अधिक प्रभाव है कि प्रधानमन्त्री को अपने सभी सहयोगी मन्त्री ससद से लेने पडे हैं।

(iii) सरकार को नियन्त्रित करने के लिए काम रोको प्रस्ताव ससद के हाथ म एक प्रमुख हथियार है। जब कभी देश मे कोई रोमाचकारी दुर्घटना हो जावे,अथवा सार्वजनिक शाति भग हो जावे तो ससद 'काम रोको' प्रस्ताव द्वारा सरकार को बाध्य कर सकती है कि अन्य कार्यों को रोक कर पहले वह घटना पर विचार करे और ऐसे उपाय सोचे जिससे भविष्य मे उस प्रकार की अन्य दुर्घटना न हो।

(iv) ससदात्मक शासन प्रणाली होने के कारण जापानी मन्त्रिमण्डल के मन्त्री ससद के अधिवेशनो मे बैठते हैं और इसके वाद विवादो मे भाग लेते हैं।

संसद उनसे प्रशासन सम्बन्धी प्रश्न पूछती है जिनके उन्हे सन्तोषप्रद उत्तर देने पड़ते हैं यदि उनके उत्तर संतोषप्रद नही होते तो वह उनके विरूद्ध अविश्वास का प्रस्ताव पारित कर समस्त मन्त्रिमंडल को भंग कर सकती है।

उपर्युक्त तथ्यो से स्पष्ट है कि प्रशासन के प्रधान अवयव मन्त्रिमंडल का निमाण अस्तित्व और अन्त संसद की इच्छाओ पर निर्भर है।

इसके अतिरिक्त, वर्तमान समय मे संसद का ध्यान जापान के वैदेशिक सम्बन्धो पर विशेष रूप से रहने लगा है, क्योकि द्वितीय विश्व-युद्ध के अनन्तर उसने युद्ध करने की नीति का सदैव के लिए परित्याग कर दिया है और अब उसकी वैदेशिक नीति शांति, मित्रता तथा सहयोग के सिद्धातो पर आधारित है। अत. यह आवश्यक होगया है कि मन्त्रिमंडल समय समय पर संसद को वैदेशिक मामलों के सम्बन्ध मे सरकार द्वारा अपनाई गई नीति से अवगत कराता रहे।

मन्त्रिमडल द्वारा अनुदान की माग को अस्वीकृत कर प्रतिनिधि सदन सरकार की नीतियो के प्रति असन्तोष प्रकट करती है। मन्त्रिमण्डल द्वारा प्रस्तुत आय-व्ययक की मागो मे कटौती कर प्रतिनिधि सदन सरकार को नियन्त्रित करता है तथा उसमें अप्रत्यक्ष रूप से अविश्वास प्रकट करता है।

अन्त मे, संसद प्रशासन की जाच के लिए समितिया नियुक्त करती है। जो उसके समक्ष अपना प्रतिवेदन प्रस्तुत करती हैं और भविष्य के लिये सुझाव देती हैं। समितियो द्वारा प्रस्तुत प्रतिवेदन पर सदन में वाद विवाद होता है तथा सरकार की आलोचना की जाती है। संसद ही सरकार द्वारा की गई सन्धियो का अनुमोदन करती है, और इसके अनुमोदन के अनन्तर ही वे वैध माने जाते हैं।

इस प्रकार, संसद प्रशासन सम्बन्धी सभी विषयो को नियन्त्रित करने का अधिकार रखती है।

(३) वित्तीय शक्तियां—संसद राष्ट्रीय वित्त की सरक्षक है। मन्त्रिमण्डल का यह दायित्व है कि वह प्रत्येक वर्ष के लिये आय व्ययक तैयार करे और संसद के समक्ष उसे विचार तथा निर्णय हेतु प्रस्तुत करे। संसद के अनुमोदन के बिना न तो नए कर लगाए जा सकते हैं, और न प्राचीन करो मे कोई संशोधन ही किया जा सकता है। इसी भांति उसकी स्वीकृति के बिना सरकार न तो कोई व्यय ही कर सकती है और न उसके लिय अपने को बाध ही सकती है। मन्त्रिमण्डल का अधिकार है कि वह आवश्यकता पड़ने पर राज्य की रक्षित निधि से व्यय कर सके, किन्तु इस प्रकार किए गए व्यय पर संसद से परवर्ती स्वीकृति लेना आवश्यक है।

आय व्ययक के विषय मे यह बात विशेष उल्लेखनीय है कि जापान मे व्यय की सभी मदें संसद द्वारा स्वीकृत की जाती हैं जबकि इगलैड में ऐसी अनेक मदें होती हैं जिन पर पार्लियामेंट की स्वीकृति प्राप्त करना आवश्यक नहीं समझा

जाता। ऐसे व्यय 'राज्य पर भारित व्यय' कहलाते हैं। जापान में 'राज्य पर भारित व्यय' की कोई व्यवस्था नहीं है।

इसके अतिरिक्त सम्राट और उसके परिवार के सभी व्यक्तियों का व्यय संसद द्वारा नियन्त्रित तथा स्वीकृत किया जाता है, क्योंकि व्यक्तिगत रूप से सम्राट के पास अब कोई सम्पत्ति नहीं है। इतना ही नहीं, संसद की स्वीकृति के बिना राजवंश का कोई भी व्यक्ति न तो किसी प्रकार की सम्पत्ति ग्रहण कर सकता है, और न दे ही सकता।

संक्षेप में संसद को आर्थिक व्यवस्था पर नियन्त्रण रखना अनिवार्य है, क्योंकि देश की प्रगति में उसका महत्वपूर्ण योग रहता है। सरकार का भी यह दायित्व है कि वह नियमित मध्यान्तरों से अथवा कम से कम वार्षिक रूप में संसद के सम्मुख वित्त सम्बन्धी प्रतिवेदन प्रस्तुत करे, जिससे वह देश की वित्तीय स्थिति से अवगत होती रहे। वस्तुतः राष्ट्रीय वित्त पर संसद का पूर्ण नियन्त्रण है।

(४) संविधान में संशोधन सम्बन्धी शक्ति -यह एक महत्वपूर्ण शक्ति है। इसके अन्तर्गत संसद संविधान में संशोधन करने के लिये प्रस्ताव प्रस्तुत करती है जो प्रत्येक सदन में कुल सदस्यों के दो तिहाई बहुमत से स्वीकृत किए जाते हैं। इसके अनन्तर उन पर लोक निर्णय लिया जाता है। जनता की स्वीकृति प्राप्त होने पर वे सम्राट द्वारा संविधान के अंग के रूप में उद्घोषित कर दिये जाते हैं।

(५) न्यायिक शक्ति —वैसे तो न्याय के लिये जापान में न्यायालय हैं जो सभी प्रकार के मुकदमों का निर्णय करते हैं परन्तु फिर, भी संविधान ने कुछ न्यायिक शक्तियाँ संसद को भी प्रदान की हैं। प्रथम तो न्यायालयों का संगठन तथा न्यायाधीशों का वेतन एवं भत्ते आदि संसद द्वारा निर्धारित किए जाते हैं, क्योंकि उनके विषय में संविधान में कुछ नहीं बतलाया गया है। दूसरे, संसद को एक महाभियोग न्यायालय स्थापित करने का अधिकार भी दिया गया है, जिसका कार्य न्यायाधीशों के विरुद्ध लगाए गए अभियोगों की सुनवाही करना है। इस न्यायालय में दोनों सदनों के सदस्य होते हैं। इस प्रकार संसद न्यायाधीशों पर भी नियन्त्रण रखती है।[1]

(६) निर्वाचन सम्बन्धी शक्ति —प्रत्येक सदन अपने सभापति एवं उप-सभापति को स्वयं निर्वाचित करता है।

(७) अन्य अधिकारः—उपर्युक्त कार्यों के अतिरिक्त संसद को कुछ और भी कार्य करने पड़ते हैं। संसदके दोनों सदनों को यह अधिकार है कि वे अपने सदस्यों के निर्वाचन सम्बन्धी झगड़ों को स्वयं तय करें। संविधान ने धारा ५५ के

1 धारा ६४

अनुसार उनको यह अधिकार भी दिया है कि वे किसी भी सदस्य को सदन की सदस्यता से पृथक कर दें।

राजगद्दी के उत्तराधिकारी सम्बन्धी नियम ससद द्वारा ही निर्मित किए जाते हैं। इस सदर्भ मे धारा २ स्पष्ट करती है कि राजगद्दी के उत्तराधिकारी का अधिकार वश परम्परागत होगा, किन्तु उसका निश्चय 'राज्य परिवार कानून, (Imperial House Law) द्वारा किया जावेगा, जिसे ससद निर्मित करती है।

सक्षिप्त जापान की ससद का वे सभी अधिकार प्राप्त है जो एक स्वतन्त्र देश की ससद को मिलने चाहिए।

४ ससद सदस्यों के अधिकार तथा सुविधाए—जापान मे ससद के सदस्यो को वे सभी अधिकार तथा सुविधाये दी गई हैं, जो भारत तथा इगलड आदि देशो के ससद सदस्यो को प्राप्त हैं। उनमे प्रमुख हैं—

(१) विधि निर्माण का काय अत्यन्त महत्वपूर्ण है। उसके लिए यह परमावश्यक है कि ससत्सदस्य पूर्ण स्वतन्त्र हो और सदन मे दिए गए भाषणो के लिए उन्हे किसी प्रकार से उत्तरदाई न ठहराया जावे, अन्यथा वे अपने कर्तव्यो को निर्भीकता, निष्पक्षता तथा सुचारु रूप से नही कर सकेंगे। यह अपेक्षित है कि उन्हे इस बात का पूर्ण विश्वास मिले कि वे अपने भाषणो के लिये न्यायालय द्वारा दण्डित नही होंगे। धारा ५१ के अनुसार उन्हें इस प्रकार की सभी सुविधाए दी गई हैं।

(२) ससद् के दोनो सदनो के सदस्य राष्ट्रीय निधि से ६८००० येन मासिक तन पाते हैं। जो कानून द्वारा निश्चित किया गया है। इसके अतिरिक्त सदस्यो को सत्र के दिनो मे प्रतिदिन १००० येन, १००० येन मासिक पत्र व्यवहार के लिये २० ००० येन मासिक निजी सचिव तथा कार्यालय के लिये और दिए जाते हैं। देश यात्रा के लिए उन्हे रेल, जहाज अथवा बस के पास दिए जाते हैं।

(३) धारा ५० के अनुसार सदन के किसी भी सदस्य को अधिवेशन काल मे बन्दी नही बनाया जाता है, और यदि पहले से बन्दी हो तो सदन की माग पर अधिवेशन काल के लिए मुक्त कर दिया जाता है।

(४) ससद सदस्यो को यह अधिकार है कि वे सदन के पुस्तकालय का उपयोग करें।

उपर्युक्त सुविधाओ के साथ साथ उनका यह दायित्व है कि वे सदन मे पूर्ण अनुशासन से काय करें। अनुशासन भग करने पर उनके विरुद्ध कार्यवाही भी की जा सकती है।

(५) **ससद के पदाधिकारी**—जापान मे सत्रारम्भ होते ही पहला कार्य अध्यक्ष का निर्वाचन करना होता है। प्रतिनिधि सदन का अध्यक्ष स्पीकर

(Speaker) तथा समासद् सदन का अध्यक्ष प्रेसीडेण्ट (President) कहलाता है इनके अतिरिक्त कतिपय पदाधिकारी और होते हैं जिनमे उपाध्यक्ष का स्थान प्रमुख होता है पूर्ववर्त्ती सविधान के अन्तर्गत इन पदाधिकारियो को वहा का सम्राट तथा मत्री नियुक्त करते थे। अब वे सदनो द्वारा निर्वाचित किए जाते हैं।[1] इन पदाधिकारियो के निर्देशन के लिए सविधान न कोई नियम निर्धारित नही किए हैं, किन्तु परम्परानुसार स्पीकर बहुमत दल का होता है और डिप्टी स्पीकर उस दल का, जिसका स्थान सदन मे दूसरा होता है। जब कभी मन्त्रिमडल को सदन मे स्पष्ट बहुमत प्राप्त न हो तब ये पदाधिकारी अन्य दलो से भी लिए जाते हैं। दोनो सदनो के अध्यक्षो को १ लाख १० हजार येन तथा उपाध्यक्षो को ८८ हजार येन मासिक वेतन मिलता है।

दलीय सदस्य होने से जापान के स्पीकर की स्थिति इ लैंड के स्पीकर की स्थिति से सर्वथा भिन्न है। निर्वाचित होने के अन्तर इ गलैंड का स्पीकर अपने दल से सम्बन्ध विच्छेद कर देता है। वह न तो दल की बैठको मे जाता है, और न उसके पत्रो मे कोई लेख भजता है। राजनीतिक क्लब मे जाना अथवा दल के व्यक्तियो से मिलना जुलना उसकी प्रतिष्ठा के प्रतिकूल समझा जाता है। एक बार निर्वाचित होने पर, वह अपने पद पर तब तक रह सकता है, जब तक कि वह चाहे। इसके विपरीत जापान का स्पीकर दलीय होता है, दल द्वारा निर्वाचित होता है और निर्वाचित होने के अन्तर भी वह दल का सदस्य बना रहता है। यद्यपि कुछ दिनो से यह परम्परा बन गई है कि निर्वाचित होने के पश्चात् उसे अपने पद से त्यागपत्र देना चाहिए।

अध्यक्ष की स्थिति तथा कार्य —उपर्युक्त जापानी अध्यक्षो तथा उपाध्यक्षो की वही स्थिति है जो इ ग्लैंड के स्पीकर की है। और कार्य भी वही करने पड़ते हैं जो इ गलैंड के स्पीकर को। परन्तु यानागा इस मत से सहमत नही है। उसके मतानुसार जापान के प्रतिनिधि सदन के अध्यक्ष का पद अमेरिका के निम्न सदन के अध्यक्ष के समान है।[2] सक्षेप मे, प्रतिनिधि सदनके अध्यक्ष को निम्न कार्य करने पड़ते है —

(१) सत्रारम्भ होते ही अध्यक्ष को पहला काम यह देखना होता है कि सदन मे आवश्यक उपस्थिति है अथवा नही।

---

1. धारा ५८
2. The role of the presiding officer of the House of Representatives is very much like that of his counterpart in the United States Congress. As a presiding officer of the highest law making organ the speaker is naturally expected to be as fair and impartial as possible, but he functions to advance the interests of the party and aids the government's leg slative programme."—C Yanaga

(२) उसका दूसरा कार्य सदन की बैठकों की अध्यक्षता करना है। वह उसके कार्यों को निश्चित कार्य प्रणाली के अनुसार चलाता है तथा विधेयकों को सम्बन्धित समितियों के पास भेजता है।

(३) उसका यह कर्त्तव्य है कि वह ऐसे विधेयकों पर सदन मे विचार न होने दे जो सदन की सुनिश्चित व्यवस्था के प्रतिकूल हो।

(४) बोलते समय सभी सदस्य अध्यक्ष को सम्बोधित करते हैं। वह उन्हे प्रश्न पूछने की अनुमति देता है और सदस्यों के बोलने के क्रम का निर्णय करता है।

(५) उसे यह अधिकार है कि वह कार्यों के क्रम (Order of business) को निर्धारित करे और विवादपूर्ण विषयों पर अपनी व्यवस्था (Ruling) दे।

(६) वही 'काम 'रोको' प्रस्तावों के प्रस्तुत करने की अनुमति देता है, तथा उन्हें नियमित अथवा अनियमित घोषित करता है।

(७) अध्यक्ष किसी वाद विवाद को समाप्त करने की आज्ञा देता है और यह भी निर्णय करता है कि किस विषय का कितने समय तक वाद विवाद हो।

(८) वह सदस्यों द्वारा दिए गए मतों की गणना करता है, निर्णय घोषित करता है और समान मत आने पर निर्णायक मत (Casting Vote) देता है।

(९) सदन से बाहर वह उसका प्रतिनिधित्व करता है।

(१०) सदन मे शांति तथा अनुशासन बनाए रखना उसका दायित्व है। यदि कोई सदस्य असमदीय भाषा का प्रयोग करे अथवा सदन के सुनिश्चित नियमों को भग करे अथवा सदन की प्रतिष्ठा मे किसी प्रकार की हानि पहुचावे अथवा अध्यक्ष की आज्ञा न माने तो वह उसे चेतावनी दे सकता है। यदि फिर भी वह अनुशासन हीनता से कार्य करे तो वह उसे अस्थाई रूप से सदन के बाहर भी निकलवा सकता है। इसके लिए उपस्थित सदस्यों के दो तिहाई बहुमत से एक प्रस्ताव पारित होना आवश्यक है।[1] बाहर निकालते समय शस्त्र परिचारक (Marshal of House) से सहायता ली जा सकती है।

(११) वह दर्शकों के प्रवेश पर नियन्त्रण लगा सकता है, उन्हे सदन से बाहर जाने की आज्ञा दे सकता है और दीर्घाओं (Galleries) को खाली कर सकता है।

(१२) यदि सदन मे अव्यवस्था इतनी अधिक फैल जावे कि नियन्त्रण रखना कठिन हो तो वह सदन की कार्यवाही को स्थगित कर सकता है।

सक्षिप्त अध्यक्ष का पद गौरव, दायित्व तथा शक्ति का प्रतीक है। वह लोक तन्त्रात्मक परम्पराओं का जन्म दाता तथा सरक्षक है।

1 धारा ५८

ससद् की कार्य प्रणाली

(i) गणपूर्ति—गणपूर्ति के लिए धारा ५६ मे स्पष्ट किया गया है कि *किसी भी सदन मे कार्य प्रारम्भ करने के लिए सम्पूर्ण सदन के कम से कम एक* तिहाई सदस्यो की उपस्थिति अनिवार्य है। प्रत्येक विषय सदन मे उपस्थित सदस्यो के बहुमत से निर्णय किए जावेंगे। समान मत होने पर सदन का अध्यक्ष निर्णायक मत देगा।

(ii) कार्यवाही सम्बन्धी नियम—सदन की कार्यवाही को व्यवस्थित करने के लिए, कुछ नियम सुनिश्चित किए जाते हैं, जो देश काल के अनुरूप होते हैं। मेइजी सविधान के अन्तर्गत कुछ नियम सम्राट के अध्यादेश द्वारा स्थिर किए गए थे इस अध्यादेश को 'डायट के सदनो का कानून' (Law of the Houses of Diet) कहते हैं। नवीन सविधान के लागू होने पर प्राचीन नियमो मे कुछ परिवर्तन किया गया, कुछ प्राचीन नियमो को ज्यो की त्यो ले लिया गया और कुछ मे पाश्चात्य प्रणाली के अनुरूप परिवर्तन किया गया। प्रचलित नियमो मे से दो एक उद्धृत कर देना अलम होगा।

(१) प्रत्येक सदन का यह दायित्व है कि वह अपनी बैठको और कार्यों का लेखा रक्खे और उसे प्रकाशित कर वितरित करे गोपनीय बातें प्रकाशित नही की जाती।

(२) सदन की कार्यवाही सार्वजनिक होती है, गुप्त नहीं, किन्तु उपस्थित सदस्यो के दो तिहाई या उससे अधिक सदस्यो के कहने पर, वे गुप्त भी रक्खी जा सकती हैं।

(३) प्रत्येक सदन के अधिवेशन-काल मे ऐसी बैठकें भी बुलाई जाती हैं, जिनमे सरकार की नीति की खुले तौर पर आलोचना की जाती है। ये बैठकें दो दो सप्ताह के अन्तर से बुलाई जाती हैं।

(iii) ससद के सत्र—साधारणत. ससद् का सत्र प्रतिवर्ष दिसम्बर मे बुलाया जाता है जो १५० दिन चलता है उसकी तिथि सम्राट द्वारा घोषित की जाती है सत्र की सूचना उसकी तिथि से २० दिन पूर्व निकलनी चाहिए, परन्तु विशेष अथवा असाधारण सत्रो के लिए इसकी कोई आवश्यकता नही होती। किसी *भी सदन के ¼ सदस्यो की लिखित प्रार्थना करने पर, विशेष अधिवेशन भी बुलाये* जा सकते हैं। इस प्रकार के प्रार्थना-पत्र सम्बन्धित सदन के अध्यक्ष द्वारा मत्रिमडल के पास भेजे जाते हैं। इस प्रकार की माग को सरकार ठुकरा नहीं सकती।

६, प्रतिनिधि-सदन तथा सभासद्-सदन में सम्बन्ध.—इसमे सन्देह नहीं कि प्रत्येक विधेयक के निर्माण मे डायट के दोनो सदनों का घनिष्ठ सहयोग अपेक्षित है, *किन्तु नूतन सविधान ने प्रतिनिधि-सदन को सभासद सदन की तुलना मे उच्च*

स्थान प्रदान किया है। समासद-सदन को केवल द्वितीय सदन ही नहीं, अपितु द्वितीय श्रेणी का (Secondary) सदन रक्खा गया है। अत दोनो सदनो की तुलना करना बहुत आवश्यक है। यह तुलना दो बिन्दुओं पर की जा सकती है — (i) सगठन तथा (ii) अधिकार। **संगठन** —सगठन के अन्तर्गत आकार, सदस्य योग्यता, निर्वाचनविधि तथा कार्यकाल आते हैं। प्रतिनिधि सदन डायट का निम्न तथा लोकप्रिय सदन है, जिसमे ४६७ सदस्य हैं। समासद सदन उच्च सदन का नाम है, जिसमे कुल २५० सदस्य हैं। सदस्य योग्यताओ मे कोई विशेष उल्लेखनीय अन्तर नही रखा गया है। इतना अवश्य है कि उच्च सदन के सदस्यो की आयु कम से कम ३० वर्ष होती है, जब कि निम्न सदन के सदस्यो की कम से कम २५ वर्ष।

दोनो सदनो का निर्वाचन समान रीति से वयस्क मताधिकार पर किया जाता है। निर्वाचन विधि गुप्त तथा प्रत्यक्ष रक्खी गई है, और एक ही मतदाता दोनो सदनो को निर्वाचित करते हैं। सदनो के कार्य-काल मे अन्तर अवश्य है। निम्न-सदन एक अ-स्थायी सदन है जो केवल ४ वर्ष के लिए निर्वाचित किया जाता है। उसका विघटन समय से पूर्व भी हो सकता है। समासद-सदन एक स्थायी सदन है, जिसका निर्वाचन कभी भी एक समय नही होता। प्रत्येक सदस्य ६ वर्ष के लिए निर्वाचित किया जाता है, किन्तु ३ वर्ष पश्चात् आधे सदस्य अवकाश ग्रहण करते रहते हैं और उनके रिक्त स्थानो पर नए निर्वाचन कराए जाते हैं।

अधिकार—अधिकार तथा शक्तियो की दृष्टि से दोनो मे बडा अन्तर है, जो निम्न शीर्षको मे विभक्त किया जा सकता है।

विधि निर्माण क्षेत्र में—अधिकाश देशो की भांति, इस क्षेत्र मे सविधान ने दोनो सदनो को सह समान (Co-equal) तथा समन्वयकारी अस्तित्व प्रदान किया है, क्योकि व्यवस्थापिका का सफल कार्यकरण दोनों सदनो के सहयोग पर अवलम्बित होता है। कोई भी अ-वित्तीय विधेयक डायट के किसी भी सदन मे प्रस्तुत किया जा सकता है, किन्तु अधिनियम बनने के लिए यह आवश्यक है कि यह दोनो सदनो द्वारा पारित हो। किन्तु मतभेद उत्पन्न होने पर निम्न सदन को उच्चसदन की तुलना मे प्राथमिकता दी जाती है।

प्रशासन क्षेत्र में—प्रशासन के क्षेत्र मे भी प्रतिनिधि सदन अधिक शक्तिशाली रखा गया है। जैसा कि पहले बताया जा चुका है कि, प्रधानमन्त्री के चयन मे प्रतिनिधि सदन का हाथ सर्वोपरि होता है, क्योकि प्रधानमन्त्री के निर्देशन के सम्बन्ध मे मतभेद उत्पन्न होने पर अन्तत प्रतिनिधि सदन का निर्णय ही मान्य होता है। समासद्-सदन निर्णय लेने मे अधिक से अधिक दस दिन की देरी कर सकता है।

मन्त्रिमण्डल के उत्तरदायित्व के विषय मे भी प्रतिनिधि सदन की तुलना

मे उच्च सदन को शक्ति हीन रखा गया है क्योकि मन्त्रिमण्डल सामुहिक रूप से निम्न सदन के प्रति उत्तरदायी है न कि उच्च सदन के प्रति। प्रतिनिधि सदन को यह अधिकार प्राप्त है कि वह अविश्वास का प्रस्ताव पारित कर मन्त्रिमण्डल को अपदस्थ कर सके।

प्रतिनिधि सदन के भग होने पर आपात काल मे मन्त्रिमण्डल समासद सदन की बैठक बुलाता है और आवश्यक विषयो पर उसके निर्णय भी ले सकता है किन्तु इस प्रकार के सभी निर्णय नूतन प्रतिनिधि सभा के निर्वाचित होने पर स्वीकृति हेतु प्रस्तुत किये जाते हैं। यदि वह दस दिन के भीतर उन पर स्वीकृति न दे तो वे रद्द हो जाते हैं।

वित्तीय क्षेत्र में—धन विधेयक सम्बन्ध मे समासद् सदन की तुलना मे प्रतिनिधि सदन की स्थिति विशेष महत्वपूर्ण है। इस सम्बन्ध मे अन्तिम और निर्णायक शक्ति प्रतिनिधि सदन के पास है। प्रतिनिधि सदन से पारित होने पर आय व्ययक और धन विधेयक समासद सदन के समक्ष प्रस्तुत किए जाते है। यदि इन पर दोनो सदनो मे मतभेद उत्पन्न हो जावे तो अन्तत निम्न सदन का निर्णय ही अन्तिम निर्णय माना जाता है। समासद सदन केवल ३० दिन का विलम्ब कर सकता है। यह तो सर्व विदित है ही कि धन विधेयको की पहल निम्न सदन मे की जाती है, उच्च मे नही। तात्पर्य यही है कि वित्तीय क्षेत्र मे प्रतिनिधि सदन की स्थिति अधिक शक्ति शाली है।

निष्कर्षत शक्तियो के न होते हुए भी जापान म उच्च सदन के सदस्यो का सम्मान किसी प्रकार भी निम्न सदन क सदस्यो की तुलना मे कम नही है, क्योकि अनुभव तथा अवस्था मे वे निम्न सदन क सदस्यो से कही अधिक होते हैं।

८ ससद की समितियाँ—व्यवस्थापन के क्षेत्र मे समितियाँ ससद का एक अग बन गई हैं क्योकि विधि निर्माण कार्य के आधिक्य के कारण सदन अपने उत्तरदायित्व को पूर्णतया निभा नही सकता इसका प्रमुख कारण यह है कि लोकप्रिय सदन का आकार बडा होता है और सभी सदस्य प्रौढ विचार के नही होते। इसके अतिरिक्त वर्तमान वैज्ञानिक युग मे विधि निर्माण कार्य भी प्राविधिक हो गया है फिर यह अपेक्षित है कि जनता की तुष्टि के लिए विधि निर्माण में विलम्ब न हो। इसीलिए जापानी ससद को भी अपने कार्य के लिए समितियों पर निर्भर रहना पड़ता है। पूर्ववर्ती सविधान के अन्तर्गत भी समितियों का महत्वपूर्ण स्थान था, यद्यपि उनमे अधिक कार्य क्षमता न थी। उस समय स्थाई समितियो की सख्या केवल पाँच थी।

वर्तमान ससद मे चार प्रकार की समितियाँ हैं —

१. स्थाई समितियाँ (Standing Committees),

२ विशेष समितियाँ (Special Committees),

३ सम्मेलन समिति (Conference Committee), तथा

४ संयुक्त विधायिनी समिति (Joint Legislative Committee)।

१ स्थाई समितियाँ—प्रत्येक सदन मे २१ स्थाई समितियाँ निर्मित की गई हैं। प्रत्येक स्थाई समिति मे २० से ३० सदस्य तक होते हैं। सदन के प्रत्येक सदस्य को एक न एक स्थाई समिति का सदस्य होना अनिवार्य है किन्तु कोई भी सदस्य एक समय मे तीन से अधिक समितियो का सदस्य नही रह सकता। प्रत्येक समिति मे विभिन्न दलो का अनुपात वही होता है जो सदन मे होता है। इन समितियो के अध्यक्ष का निर्वाचन सदन द्वारा होता है। इनका मुख्य कार्य विधेयको की जाँच करना तथा उन पर प्रतिवेदन तैयार करना होता है। इन समितियो को सार्वजनिक सुनवाई करने का भी अधिकार प्राप्त है। दोनो सदनो मे निम्न स्थाई समितियाँ हैं —

१ परराष्ट्रीय मामलो की समिति (Committee for Foreign Affairs)

२ वित्त समिति (Committee of Finance)

३ आय-व्ययक समिति (Committee of the Budget)

४ जाँच समिति (Audit Committee)

५ न्यायिक समिति (Committee of the Judiciary)

६ श्रम समिति (Labour Committee)

७ सार्वजनिक सुरक्षा समिति (Committee of the Public Safety)

८ सार्वजनिक कल्याण समिति (Committee of the Public welfare)

९ कृषि वन समिति (Committee of Agriculture Forestry)

१० वाणिज्य समिति (Committee of the Commerce)

११ मत्स्य समिति (Committee of the Fisheries)

१२ खान-उद्योग समिति (Committee of the Mining Industry)

१३ विद्युत समिति (Committee of the Electricity)

१४ यातायात समिति (Committee of the Transportation)

१५ संवाद समिति (Committee of the Communication)

१६ भू योजना समिति Committee of the Land Planning)

१७ शिक्षा समिति (Committee of the Education)

१८ सांस्कृतिक समिति (Committee of the Culture)

१९ पुस्तकालय समिति (Committee of the Library)

२० अनुशासन समिति (Committee of the Discipline)

२१ स्टियरिंग समिति (Steering Committee)

२ **विशेष समितिया**—इन समितियो को विशष समस्याओ पर विचार करने तथा प्रतिवेदन प्रस्तुत करने हेतु निर्मित किया जाता है। इन्हे सामित धन व्यय करने का भी अधिकार होता है। काय पूर्ण होने पर ये समितिया विघटित हो जाती हैं।

३ **सम्मेलन समिति**—जब कभी ससद के दोनो सदनो मे खिच उत्पन्न हो जाता है तब इसका निर्माण होता है। इनमे दोनो सदनो स दस दस सदस्य लिए जाते हैं। इसको अपना सभापति स्वय निर्वाचित करने का अधिकार होता है। इसका एक मात्र काय सदनो का मतभेद दूर करना है। यह मतभद तीन बातो पर हो सकता है —

१ आय व्ययक स्वीकार करते समय,

२ किसी सधि को स्वीकार करते समय तथा

४ प्रधान मन्त्री के चयन के समय।

४ **सयुक्त विधायिनी समिति**—इस समिति मे १८ सदस्य होते हैं जिनमें से दस निम्न सदन से तथा आठ उच्च सदन से लिए जाते है। इस समिति का लक्ष्य व्यवस्थापन काय पर देख रेख रखना तथा सदनो के मतभद को दूर कर सम्बन्धो को मधुर बनाए रखना है। ऐसा माना जाता है कि जहा और समितियाँ राजनीतिक दलदलो मे फँसी रहती हैं वहा यह दलदलीय राजनीति से ऊपर उठकर काय करती है।[1]

५ **समितियों के दोष**—इसमे तो कोई स देह नही कि डाइट की समितियो के काय बहुत आवश्यक तथा महत्वपूर्ण हैं परन्तु वे जनता मे अभी तक लोकप्रिय नही हो सकी है। आलोचको का कहना है कि वे ससद का कसर है जिसका कोई इलाज नही है। उनमे अनेक दोष बतलाए गए हैं जिनमे प्रमुख निम्न हैं —

१ यानामा लिखता है कि समितियो की सख्या अधिक होने से राष्ट्रीय हित के प्रश्न अनेक सीमित खण्डो मे विभक्त हो जाते हैं और उन पर कोई राष्ट्रीय हित से विचार विमर्श नही हो पाता है।[2]

---

1 All other committees are perpetually in the thick of party maneuvering (it is party that counts not the individual member) but this one is at least supposed to rise above the turmoil and keep the chambers and indeed the government as a whole on an even keel

—Ogg and Zink Modern Foreign Government p 982

2 ' Committees hav thus b come little more than branches

२ अपने विभागों से अधिक सम्बन्धित होने के कारण समितियों का कार्य केवल विभागीय कार्य का समर्थन करना रह गया है। दूसरे शब्दों मे, वे अपने विभाग के अधिवक्ता के रूप मे कार्य करते हैं।[1]

३ समितियों के अध्यक्ष नौकरशाही प्रवृत्ति की ओर झुक रहे हैं। उनका व्यवहार उसी प्रकार का बन रहा है जिस प्रकार का प्रशासनिक पदाधिकारियों का होता है। उनका दृष्टिकोण भी सकीर्ण हो गया है।[2]

४ ससदीय शासन प्रणाली मे इतने अधिक अधिकार किसी निकाय को *नहीं दिए जाते, जितने कि समितियों को दिए गए हैं। उनको विधाई प्रस्ताव प्रस्तुत* करने तथा सार्वजनिक सुनवाई करने का भी अधिकार है।

५ समितियों की सख्या मे वृद्धि होने से सरकारी व्यय मे भी पर्याप्त वृद्धि हुई है।

६ कभी कभी समितियों के कारण विधि निर्माण मे अनावश्यक विलम्ब होता है।

७ अपेक्षित तो यह है कि समितियों के अध्यक्ष विशेषज्ञ हो, परन्तु होते *राजनीतिज्ञ हैं।*

८ मेकी (Makı) का कथन है कि इन समितियों का सीधे मन्त्रिमण्डल से सम्बन्ध रहता है, जिसके फलस्वरूप[3] मन्त्री अपने आपको अधिक शक्तिशाली समझने लगे हैं।

९. विधि निर्माण की प्रक्रिया—विधि निर्माण ससद का प्रमुख कार्य है, परन्तु सविधान मे इसकी प्रक्रिया का विस्तृत उल्लेख नहीं मिलता यत्र तत्र संक्षिप्त

---

and outposts of the administrative deptts or agencies of business and special interests in the Diet".

—C Yanaga.

1 'A Common Complaint is that Committees tend to develop close ties with the ministry whose field of interest is related to it that such ties encourage committees to become special pleaders for the ministers —G M Kahin

2 'Committee chairmen have become quite bureaucratic in their attitudes and functions for more often than not they are representatives and champions of the departments'.

—G Yanaga.

3 Many Japanese observers believe that this system of close linkage between legislative and executive branches has tended to strengthen the sole of the executive'

—Makı (Govt & Politics on Japan).

चर्चा अवश्य मिलती है। विधि निर्माण के लिए सर्व प्रथम एक प्रस्ताव के रूप मे प्रारूप (मसविदा) तैयार किया जाता है, जिसे विधेयक (Bill) कहते हैं। विधेयक डाइट के दोनो सदनो के सम्मुख रखे जाते हैं, और उसकी स्वीकृति प्राप्त होने पर वे अधिनियम (Act) बन जाते हैं। विधेयक दो प्रकार के होते हैं—

(१) सार्वजनिक विधेयक, और
(२) वित्तीय विधेयक।

यद्यपि जापान मे सार्वजनिक तथा वित्तीय विधेयको की प्रक्रिया मे एक दो बातो को छोडकर कोई विशेष अन्तर नही है, फिर भी हम दोनो प्रक्रियाओ का वर्णन पृथक्-पृथक् करेगे।

सार्वजनिक विधेयक के सम्बन्ध में प्रक्रिया—सार्वजनिक विधेयक, जैसा कि इसके नाम से प्रतीत होता है, उन विधेयको को कहते हैं जिनका सम्बन्ध सार्वजनिक विषयो से होता है। उनका लक्ष्य किसी सार्वजनिक हित की साधना माना गया है। ये दो प्रकार के होते हैं, प्रथम तो वे जो सरकार द्वारा प्रस्तुत किए जाते हैं, और दूसरे वे जो सदन के साधारण सदस्यो द्वारा प्रस्तुत किए जाते हैं।

सरकारी विधेयक—सरकारी विधेयक का प्रारूप सर्वप्रथम किसी विभाग मे तैयार किया जाता है। इसके तैयार करने मे केबिनेट ब्यूरो आफ लेजिस्लेशन (Cabinet Bureau of Legislation) का विशेष हाथ रहता है। यह ब्यूरो विषय का अध्ययन कर प्रारूप तैयार करता है तथा उसे वैधानिक रूप देता है। अंतिम रूप म तैयार होने के पश्चात् विधेयक को उपमन्त्रियो की परिषद् मे भेजा जाता है, तदनन्तर उस पर मन्त्रिमडल विचार करता है। मत्रिमण्डल के निश्चय कर लेने पर विधेयक को प्रधानमन्त्री के नाम पर सदन के अध्यक्ष के पास भेज दिया जाता है। एक सदन में प्रस्तुत करने के पाच दिन के भीतर विधेयक की एक प्रति दूसरे सदन के समक्ष भी प्रस्तुत करदी जाती है।

समिति में—प्रतिनिधि सदन का स्पीकर विधेयक को सम्बन्धित समिति के पास भेजता तथा, उसकी मुद्रित प्रतिया सदस्यों मे वितरित करवाता है। यदि यह आवश्यक हो कि विधेयक पर दो अथवा अधिक समितिया विचार करें तो समितियो की सयुक्त बैठक बुलाई जाती है। समितियो मे विधेयक पर वाद विवाद होता है और अनेक प्रकार की पूछताछ की जाती है। विधेयक की परीक्षा करते समय समिति को अधिकार है कि वह सदन के किसी भी सदस्य को उस पर विचार करने हेतु बुला सके। आवश्यकता पडने पर प्रधानमन्त्री तथा अन्य मन्त्री भी बुलाए जाते हैं। यदि समिति चाहे तो अध्यक्ष द्वारा सरकारी अथवा सार्वजनिक रिकार्ड भी मगा सकती है और किसी गवाह को भी बुलवा सकती है।

विचार विमर्श के पश्चात समिति विधेयक पर अपना अन्तिम निर्णय देकर प्रतिवेदन तैयार करती है।

सदन में—प्रतिवेदन तैयार होते ही विधेयक को सदन के अध्यक्ष के पास भेज दिया जाता है। अध्यक्ष उसे सदन के कार्यक्रमो मे सम्मिलित कर लेता है। समिति का सभापति सदन के सम्मुख विधेयक पर प्रतिवेदन प्रस्तुत करता है और समिति की राय प्रकट करता है। इस समय अल्प सख्यको के मत भी, यदि कोई हो, सदन के विचारार्थ रखे जाते हैं। यदि कोई सदस्य चाहे तो सशोधन सम्बधी प्रस्ताव रख सकता है। परन्तु यह आवश्यक है कि उसके समर्थन मे प्रतिनिधि सदन तथा समासद् सदन मे क्रमश कम से कम बीस व दस मत हो। वाद विवाद के अनन्तर विधेयक तथा सशोधन पर मत लिए जाते हैं। यदि बहुमत उसका समर्थन करे तो वह उस सदन द्वारा पारित हुआ माना जाता है। यदि दूसरा सदन भी विधेयक को उसी रूप मे स्वीकृत करले, तो यह मान लिया जाता है कि डाइट ने उसे स्वीकार कर लिया।

यह विशेष उल्लेखनीय है कि जापान मे इंगलैंड की भाति विधेयक पर तीन वाचन (Reading) नही होते। दोनो सदनो द्वारा पारित होने पर सदन का अध्यक्ष मन्त्रिमण्डल द्वारा सम्राट को यह सूचना देता है कि अमुक विधेयक स्वीकृत होगया। मन्त्रिमण्डल के निश्चित करने पर कि अधिनियम लागू करना है, उसे सम्राट के पास भेज दिया जाता है। सम्राट तथा प्रधानमन्त्री के हस्ताक्षरो के पश्चात् राज पत्र (Gazette) मे प्रकाशित कर दिया जाता है। यह अपेक्षित है कि स्पीकर की सूचना के ३० दिन के भीतर वह राज पत्र मे प्रकाशित हो जावे।

गैर सरकारी विधेयक—गैर सरकारी विधेयक वह होता है जिसे साधारण सदस्य प्रस्तुत करता है। यह विधेयक तभी प्रस्तुत किया जा सकता है जबकि प्रस्तुतकर्ता को प्रतिनिधि सदन तथा समासद् सदन में क्रमश २० तथा १० सदस्यो का समर्थन प्राप्त हो। सरकारी विधेयको की तुलना मे इनकी सख्या बहुत कम होती है। इस विधेयक को कैबिनेट ब्यूरो आफ लेजिस्लेशन द्वारा अन्तिम रूप देने मे कोई सहायता नही मिलती। ब्यूरो केवल उन्ही विधेयको को देखता है, जिनके पीछे सरकार का समर्थन होता है। प्रारूप तैयार करते समय समितियो के विशेषज्ञों से सहायता ली जा सकती है। सदस्यो को अधिकार है कि वे सदन के अध्यक्ष, उपाध्यक्ष तथा मन्त्रियो मे विश्वास तथा अविश्वास सम्बन्धी विधेयक या प्रस्ताव प्रस्तुत कर सकें, किन्तु यह आवश्यक है कि उन्हें कम से कम ५० सदस्यो का समर्थन प्राप्त हो। ऐसे विधेयक या प्रस्ताव लौटाये भी जा सकते हैं। ऐसे प्रार्थना पत्रों पर उन सभी सदस्यो के हस्ताक्षर अपेक्षित हैं जिन्होने उस पर पहले

हस्ताक्षर किए थे। यदि यह विधेयक किसी समिति के विचाराधीन हो उस समिति से आज्ञा प्राप्त करनी पड़ती है।

गैर सरकारी विधेयकों के पारित होने की प्रक्रिया सरकारी विधेयको की भांति ही है। अन्तर केवल इतना है कि सरकारी विधेयको के अस्वीकृत होने पर समस्त मन्त्रिमडल को त्याग पत्र देना होता है, जबकि गैर सरकारी विधेयको के स्वीकृत न होने पर सरकार की स्थिति पर कोई प्रभाव नही पड़ता और मन्त्रिमण्डल को त्याग पत्र भी नही देना पड़ता।

आय व्ययक तथा वित्तीय विधेयक—आय व्ययक एक निश्चित अवधि के लिए आमदनी और व्यय का अनुमानित विवरण होता है जिसे मन्त्रिमण्डल तैयार कर ससद के समक्ष प्रस्तुत करता है। धन विधेयक तथा व्ययक केवल प्रतिनिधि सदन मे ही पुनःस्थापित किए जा सकते हैं। इसके अनन्तर उन्हे वित्त स्थाई समिति के पास भेज दिया जाता है जब समिति उस पर पूर्ण रूपेण विचार कर चुकती है तब उसे सदन के विचारार्थ लौटा दिया जाता है। गम्भीर विचार विमर्श के बाद सदन उसे स्वीकृति प्रदान करता है। प्रतिनिधि सदन के स्वीकार कर लेने के पश्चात् बजट को सभासद सदन के पास भेजा जाता है, जो उसे ३० दिन अपने पास रख सकता है।[16] यदि इस अवधि मे वह उसे पारित न कर सके तो निम्न सदन का निर्णय ही अन्तिम मान लिया जाता है। मतभेद उत्पन्न होने की स्थिति मे सम्मेलन समिति उसे दूर करने का प्रयास करती है। यदि समिति अपने प्रयत्नो मे सफल न हो तो निम्न सदन का निर्णय ही मान्य होता है।

16. धारा ६०

8.

न्याय पालिका

(Judiciary)

१—न्यायिक पद्धति का विकास-न्याय प्रणाली का उदय —राज्य के कानूनो का समुचित रीति से पालन कराने के लिए, कानूनो को भग करने वालो को दण्ड देने के लिए तथा नागरिको के मूल अधिकारो की सुरक्षा के लिए, स्वतन्त्र तथा निष्पक्ष न्यायालयो की नितान्त आवश्यकता होती है। ये न्यायालय एक सुनिश्चित न्याय पद्धति पर कार्य करते है। किन्तु यानागा के मतानुसार सातवी शताब्दि तक जापान मे कोई न्याय पद्धति ही न थी। इसका मूल कारण यह था कि जापान का विश्व के अन्य देशो के साथ कोई सम्पर्क न था। शनै शनै जैसे जापान अपने पडौसी राज्य चीन के सम्पर्क मे आने लगा, वहा की न्यायिक विचारधारा जापानियो पर प्रभाव डालने लगी, किन्तु तत्कालीन सामन्तवादी पद्धति के अनुकूल न होने से वह स्थाई न बन सकी। सामन्तवादी युग मे बडे-बडे सामन्तो के घरेलू कानूनो से जापान मे विधि प्रणाली का शुभारम्भ हुआ। यह प्रणाली मेइजी सविधान के लागू होने तक चलती रही।

उन्नीसवी शताब्दि के उत्तरार्ध मे फ्रास और जर्मनी के न्याय विशेषज्ञो के परामर्श पर, जापान की परिस्थितियो, परम्पराओ तथा रीति रिवाजों से समन्वय रखने वाले कानून निर्मित किए गए।[1] ये कानून पूर्णत पश्चिमी पद्धति पर आधारित न थे। सन् १९४७ तक जापानी न्याय व्यवस्था इन कानूनों पर आधारित रही।

२—मेइजी काल में न्याय प्रणाली—मेइजी युग मे न्याय का स्त्रोत सम्राट था और न्यायालय उसी के नाम पर न्याय करते थे। न्यायाधीशो की नियुक्ति सम्राट के अधीन थी, तथापि यह स्वय मुकदमो की सुनवाई नही करता था। मुकदमो की सुनवाई न्यायालयो मे होती थी जो न्याय-मन्त्रालय के आधीन कार्य करते थे।

1-'The judicial system adopted in the Neijiera was based on French and German models, with modifications to allow for Japanese conditions The prewar legal system, therefore, was largely continental, rather than Anglo-Saxon, in outlook '—

G.M-Kahin ' Major Governments of Asia P. 180

कहने को तो न्यायालय स्वतन्त्र थे, परन्तु वास्तव मे स्वतन्त्र न्यायालयो की भांति उनके पास कोई अधिकार न था। वे न तो सरकार द्वारा निर्मित किसी विधि को अवैध घोषित कर सकते थे और न जनता व सरकार के बीच उठे सघर्षो का निर्णय ही कर सकते थे।

टोकियो स्थित सर्वोच्च न्यायालय मे ४५ न्यायाधीश थे। ये पाच-पाच मिलकर न्याय करते थे। इस न्यायालय को अधीनस्थ न्यायालयो के निर्णयो के विरुद्ध अपील सुनने का अधिकार था। यही राजकीय परिवार के विरुद्ध लगाए गए अपराधो का निर्णय करता था। इसे देशद्रोह तथा गम्भीर अपराधो के मुकदमो के निर्णय करने का अनन्य अधिकार था।[2] सर्वोच्च न्यायालय के आधीन सात उच्च न्यायालय थे जो देश के सात जिलो मे बने हुए थे। ये उच्च न्यायालय निम्न न्यायालयो से आई हुई अपीलो का निर्णय करते थे। उच्च न्यायालयो के अधीन प्रीफेक्चर न्यायालय थे। सबसे नीचे छोटे-छोटे मुकदमो का निर्णय करने के लिए अनुमानत ३०० स्थानीय न्यायालय और थे।[3] इनके अतिरिक्त प्रशासनिक न्यायालय भी था।

३-वर्तमान न्याय पालिका—नूतन सविधान ने प्राचीन न्यायालयो की रचना, न्यायिक प्रक्रिया तथा न्याय शास्त्र मे अनेक परिवर्तन किए हैं। आजकल जापान मे पाँच प्रकार के न्यायालय है—

१—उच्चतम न्यायालय (Supreme Court)

२—उच्च न्यायालय (High courts)

३—जिला न्यायालय (District Courts)

४—शीघ्र निर्णायक न्यायालय (Summary courts)

५—पारिवारिक न्यायालय (Courts of domestic relations)

१-उच्चतम न्यायालय—पूर्वगामी सविधान के अनुसार न्यायिक शक्ति सम्राट मे निहित थी, किन्तु अब उच्चतम न्यायालय तथा विधि द्वारा स्थापित अन्य न्यायालयो मे स्थित है।

न्यायाधीशों की सख्या—नूतन सविधान यह नहीं बतलाता कि उच्चतम न्यायालय मे कुल मिलाकर कितने न्यायाधीश होंगे, परन्तु धारा ७९ उपबन्धित

---

2 The Supreme court heard appeals form the courts of appeals and had exclusive jurisdiction over case of treason and serious of fences against the imperial family.'
G M Kahin : Ibid p 180

3 'At the lowest level there were a little under 300 local courts in which minor cases were tried '
—G M. Kahin-Ibid

करती है कि उच्चतम न्यायालय मे प्रधान न्यायाधीश तथा अन्य न्यायाधीश होंगे जिनकी सख्या विधि द्वारा निर्धारित की जावेगी। संविधान निर्माताओ ने न्यायाधीशो की सख्या कठोर रूप से निर्धारित करना उचित नही समझा। वर्तमान समय मे उसमे एक प्रधान न्यायाधीश तथा १४ अन्य न्यायाधीश हैं।

न्यायाधीशो की योग्यताएँ—सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीशो की निम्न योग्यताए निश्चित की गई हैं—

(i) वह कम से कम ४० वर्ष की आयु पूरी कर चुका हो,

(ii) विधि वेत्ता हो,

(iii) १५ न्यायाधीशो मे कम से कम १० कानून के उच्चकोटि के ज्ञाता हो, जिसके लिए आवश्यक है कि उन्हे दस वर्ष का उच्च न्यायालय के अध्यक्ष अथवा न्यायाधीश पद के कार्य का अनुभव हो, अथवा वह बीस वर्ष तक शीघ्र निर्णायक न्यायालय का न्यायाधीश या लाक अभियोक्ता या वकील या विश्वविद्यालय के विधि-विज्ञान का प्राध्यापक रहा हो।

ऐसे व्यक्ति, जो सरकार के सामान्य पदो पर नियुक्त न हो सकें, या जो कारावास मे बन्दी रह चुके हो, या जिन्हे महाभियोग न्यायालय ने पृथक् कर दिया हो, इस न्यायालय के न्यायाधीश नियुक्त नही किए जा सकते।

शेष पाच न्यायाधीशो को विधि-विशारद होना अनिवार्य नही है।

न्यायाधीशो की अवधि—उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीश साधारणत ७० वष की आयु तक अपने पदो पर रह सकते हैं, परन्तु निम्न अवस्थाओ मे उन्हे समय से पूर्व भी अपने पदो से पृथक् किया जा सकता है।

(i) महाभियोग—न्यायाधीश अपने पदो से तभी हटाए जाते हैं जब कि प्रतिनिधि सदन उन पर कदाचार का महाभियोग लगाए और ससद की एक समिति के परीक्षण मे वह सिद्ध हो जाए। इस समिति मे १४ सदस्य होते हैं, जिनमे दोनो सदनो से ७ ७ सदस्य लिए जाते हैं। अभी तक किसी न्यायाधीश पर महाभियोग नही लगाया गया है।

(ii) न्यायिक निर्णय—सर्वोच्च न्यायालय को अधिकार है कि वह स्वय न्यायाधीशो की शारीरिक एव मानसिक क्षमता की जाच कर उन्हें अपने पदो से त्याग पत्र देने के लिए बाध्य कर सके, तथा उनकी न्यायिक भूलो के लिए उन्हें दण्ड दे। नूतन फौजदारी प्रक्रिया से अवगत न होने के कारण सन् १९५० मे चार न्यायाधीशो को अपने पदो से त्याग पत्र देने पर बाध्य किया गया, परन्तु उन्होंने ऐसा करने से मना कर दिया। इस पर न्यायालय ने उन पर दस-दस हजार येन का जुर्माना कर दिया।

(iii) जनता का समर्थन प्राप्त न होने पर—न्यायाधीशो को जनता का

बहुमत प्राप्त न होने पर भी पदों से पृथक् कर दिया जाता है। यह जनमत प्रतिनिधि सदन के प्रथम निर्वाचन के समय लिया जाता है और पुनः १०-१० वर्ष के अनन्तर। अपने पदों पर स्थिर बने रहने हेतु न्यायाधीशों के लिए यह आवश्यक है कि उन्हें जनता का समर्थन प्राप्त हो।

न्यायाधीशों की नियुक्ति—प्रधान न्यायाधीश की नियुक्ति प्रधानमन्त्री की सिफारिश पर सम्राट द्वारा की जाती है, तथा अन्य न्यायाधीशों को मन्त्रिमण्डल नियुक्त करता है। नियुक्ति के अनन्तर अपने पदों के स्थायित्व के लिए उन्हें जनता का समर्थन प्राप्त करना अनिवार्य है।

वेतन—प्रधान न्यायाधीश का वेतन एक लाख दस हजार येन तथा अन्य न्यायाधीशों का ८८००० येन मासिक निश्चित किया गया है। प्रधान न्यायाधीश का वेतन प्रधान मन्त्री तथा सदनों के अध्यक्षों के वेतन के समान है। इसी भांति अन्य न्यायाधीशों का वेतन सदनों के उपाध्यक्षों के बराबर है। नियुक्ति के पश्चात न्यायाधीशों के वेतन भत्तों में कोई कमी नहीं की जाती।

अधिकार तथा शक्तियां—सर्वोच्च न्यायालय को निम्न अधिकार तथा शक्तियां प्राप्त हैं।

(१) **मौलिक अधिकारों का अभिरक्षक (Guardian) तथा संविधान का संरक्षक.**—संविधान ने प्रत्यक्ष तथा स्पष्ट रूप से यद्यपि इस न्यायालय को नागरिकों के मूल अधिकारों का अभिरक्षण और संविधान की रक्षा का दायित्व नहीं दिया, तो भी अप्रत्यक्ष रूप से यह दोनों की रक्षा कर सकता है क्योंकि धारा ८१ उपबन्धित करती है कि उच्चतम न्यायालय सरकार के प्रत्येक कार्य एवं आदेश तथा संसद द्वारा निर्मित प्रत्येक कानून की संवैधानिकता की जांच कर सकता है। संविधान तथा नागरिकों के मूल अधिकारों की उपेक्षा करने वाले आदेश अथवा कानून निश्चित् रूप से अवैधानिक तथा असंगत होंगे। अतः यह न्यायालय उन्हें अवैध तथा अमान्य घोषित कर सकता है।

(२) **न्याय सम्बन्धी**—इसे अधीनस्थ न्यायालयों के निर्णयों के विरुद्ध हर प्रकार के मुकदमों में अपील सुनने का अधिकार है। इसके पास अधिकांशतः संविधान सम्बन्धी मुकदमे आते हैं। सभी मुकदमों में इसका निर्णय अन्तिम माना जाता है।

(३) यह न्यायालय न्यायिक प्रशासन को नियमित तथा आन्तरिक अनुशासन को स्थिर बनाए रखने के लिए नियम बनाने को सक्षम है। यह अपनी कार्य प्रणाली के लिए भी नियम बनाता है।

(४) इस न्यायालय का न्यायाधीशों की नियुक्ति में भी विशेष हाथ रहता है, क्योंकि यह वह सूची तैयार करता है जिसमें से मन्त्रिमण्डल न्यायाधीशों का चयन करता है।

(५) प्रशासन तथा पर्यवेक्षण सम्बन्धी अधिकार—सर्वोच्च न्यायालय को अधिकार है कि वह अधीनस्थ न्यायाधीशों तथा उनके कार्यों की देख रेख करे। उसका यह दायित्व है कि वह न्याय विभाग के कर्मचारियों की नियुक्ति तथा उनके प्रशिक्षण का समुचित प्रबन्ध करे।

(६) सर्वोच्च न्यायालय की कार्यवाही साधारणतः गोपनीय नहीं होती, प्रत्युत सार्वजनिक होती है। यदि सभी न्यायाधीश सहमत हो तो आवश्यकता होने पर गुप्त भी रखी जा सकती है। संविधान से सम्बन्धित मुकदमो की सुनवाई सभी न्यायाधीशो की उपस्थिति मे होती है किन्तु निर्णय के समय ९ न्यायाधीशो का होना आवश्यक है। साधारण विवादो की सुनवाई के लिए केवल पाच न्यायाधीशो की बंच रखी गई है, किन्तु निर्णय के समय तीन न्यायाधीशो का होना अनिवार्य है।

(७) उच्चतम न्यायालय का उल्लेखनीय कार्य न्यायिक अन्वेषण तथा न्यायाधीशो एव लिपिको को प्रशिक्षण देना है, जिसके लिए इसमे दो संस्थान हैं। संस्थानो के अतिरिक्त न्यायिक शोध अधिकारी (Judicial Research Officers) भी होते हैं, जो न्यायालय द्वारा दिए गए निर्णयो पर शोध करते हैं। ये अधिकारी सार्वजनिक सेवा के सदस्य होते हैं।[4]

२ उच्च न्यायालय—उच्चतम न्यायालय के नीचे उच्च न्यायालयो की व्यवस्था है। समस्त देश को आठ क्षेत्रो मे विभक्त किया गया है और प्रत्येक क्षेत्र मे एक उच्च न्यायालय की स्थापना की गई है। उच्च न्यायालय मे एक मुख्य न्यायाधीश तथा अन्य न्यायाधीश होते हैं, जिनकी संख्या संविधान द्वारा निश्चित नहीं की गई है। आजकल सबसे अधिक न्यायाधीश टोकियो उच्च न्यालय मे हैं, जहा उनकी संख्या ६४ है। सबसे कम न्यायाधीश सपोरो उच्च न्यायालय मे हैं, जहा उनकी संख्या केवल सात है।

संविधान ने न्यायाधीशो की योग्यताओ के विषय मे कोई निश्चित नियम नहीं बताए हैं, परन्तु आजकल उनको कम से कम दस वर्ष का कानूनी अनुभवी होना आवश्यक रखा है। उच्चतम न्यायालय इस पद के योग्य व्यक्तियो की एक सूचि तैयार करता है जिसमे से मन्त्रिमडल उनका चयन करता है प्रथम बार वे केवल दस वर्ष के लिए नियुक्त किए जाते हैं, परन्तु वे पुन भी नियुक्त किए जा सकते हैं। वे अधिक से अधिक ६५ वर्ष की आयु तक अपने पदो पर कार्य कर सकते हैं। उन्हे निश्चित वेतन मिलता है जो उनके कार्यकाल मे घट-बढ नहीं सकता।

उच्च न्यायालय का अधिकार क्षेत्र अधीनस्थ न्यायालयो के निर्णयो की

4-See The New Japan by Quigley & Turner, P. 364

अपील सुनना है। सामान्यत इसका निर्णय अन्तिम होता है। किसी मुकदमें पर निर्णय देने के लिए कम से कम तीन न्यायाधीशों का होना अनिवार्य है। दूसरे, सरकार को अपदस्थ करने वाले मुकदमो के लिए यह प्रारम्भिक अदालत है। ऐसे मुकदमो पर निर्णय देते समय कम से कम पाच न्यायाधीशों का उपस्थित होना आवश्यक है।

वैसे तो न्यायालय के न्यायाधीश पूर्ण रूपेण स्वतन्त्र हैं, परन्तु उनके कार्यो एव दोषो की जाच उच्चतम न्यायालय द्वारा होती है।

३ जिला न्यायालय —जापान मे ४९ जिला न्यायालय हैं जो उच्च न्यायालयों के अधीन रखे गए है। इनमे से एक-एक ४६ प्रीफेक्चर मे और तीन होकेडो मे हैं। जिला न्यायालय में केवल एक न्यायाधीश होता है, परन्तु आवश्यकता पड़ने पर दो और नियुक्त किए जाते है। इस न्यायालय का अधिकार दीवानी एव फौजदारी मुकदमो का निर्णय करना तथा अधीनस्थ न्यायालय की अपील सुनना है।

४ शीघ्र निर्णायक न्यायालय —यह देश की सबसे छोटी अदालत का नाम है। यह अदालत दीवानी तथा फौजदारी दोनो प्रकार के विवाद सुनती है। इस अदालत को पाच हजार येन से कम के मुकदमो का निर्णय करने का अधिकार है। फौजदारी मुकदमो मे यह एक मास से कम की सजा दे सकती है। यद्यपि इसमे केवल एक न्यायाधीश होता है, परतु उसे मुकदमो का निर्णय शीघ्र करना पड़ता है।

५ पारिवारिक न्यायालय —उपर्युक्त न्यायालयो के अतिरिक्त जापान मे २७६ पारिवारिक न्यायालय भी है, जो जिला न्यायालयो की शाखा के रूप मे कार्य करते हैं। ये न्यायालय परिवार तथा सम्बन्धियो के सम्बन्धो में सामञ्जस्य बनाए रखने का प्रयास करते हैं। इनमें न्यायाधीश तथा साधारण नागरिक दोनो बैठते हैं, जिसके परिणाम स्वरूप यह अर्ध न्यायिक तथा अर्ध पञ्चायती बन गया है। ये अदालतें पारिवारिक समस्याओ जैसे, तलाक, सम्पत्ति विभाजन, गोद लेना, उत्तराधिकार, वसीयत, प्रतिज्ञा भग आदि का निर्णय करती है।

६ प्रोक्यूरेटर्स (Procurators) —ये राज्य कर्मचारी होते हैं जिनकी नियुक्ति मन्त्रिमण्डल द्वारा की जाती है। प्रोक्यूरेटर्स का प्रधान प्रोक्यूरेटर जनरल (Procurator general) कहलाता है जो ६५ वर्ष की आयु तक अपने पद पर कार्य कर सकता है। अन्य प्रोक्यूरेटस ६३ वर्ष की आयु तक अपने पदो पर रहते हैं। सविधान ने उनके वेतन भत्ते, योग्यताओ तथा प्रशिक्षण आदि के सम्बन्ध में कुछ नही बतलाया है। ये सभी बातें विधि पर छोड़ दी हैं। जापान में प्रत्येक स्तर के न्यायालयो के लिए पृथक पृथक् प्रोक्यूरेटर रखे जाते हैं। उनका कार्य सरकार की ओर से फौजदारी मुकदमे दायर करना, उनकी पैरवी करना तथा उन पर निगरानी रखना है। सभी प्रोक्यूरेटर न्याय मन्त्रालय के नियन्त्रण मे कार्य करते हैं।

७ जापान की न्याय व्यवस्था की विशेषताएं.—यद्यपि जापानी न्याय व्यवस्था मे कतिपय दोष देखे जाते हैं, परन्तु फिर भी उसकी गणना उत्तम कोटि की न्याय व्यवस्थाओ मे की जाती है । यहाँ के न्यायिक क्षेत्र के संदर्भ मे निम्न बातें उल्लेखनीय हैं —

(१) न्यायपालिका की स्वतन्त्रता—जापानी न्यायालय की सबसे बडी विशेषता उसके न्यायाधीशो का स्वतन्त्र तथा निर्भय होना है। स्वतन्त्रता से अभिप्राय है कि न्यायालय को प्रशासन के अन्य अ गो के अतिक्रमण से पूर्ण स्वतन्त्र रखा गया है । कतिपय बातो को छोडकर कार्यपालिका अथवा संसद को उसके किसी कार्य मे हस्तक्षेप करने का अधिकार प्राप्त नही है। प्रारम्भ मे न्यायाधीश मन्त्रिमण्डल द्वारा अवश्य नियुक्त किए जाते हैं, परन्तु नियुक्ति के अनन्तर वे अपने सम्पूर्ण कार्यकाल मे स्वतन्त्र रहते हैं। नियुक्ति के अतिरिक्त मन्त्री न्यायालय के किसी कार्य मे हस्तक्षेप नही कर सकते।

(२) सर्वोच्च न्यायालय अपनी कार्य प्रणाली से सम्बन्धित नियमो को स्वय निश्चित् करता है, यहा तक कि वह अपने न्यायाधीशो को त्याग पत्र देने के लिए बाध्य भी कर सकता है।

(३) जिस प्रकार न्यायालय को कार्य पालिका के नियन्त्रण से पूर्ण रूपेण मुक्त कर रखा गया है, उसी प्रकार संसद के नियन्त्रण से भी। इतना अवश्य है कि प्रतिनिधि सदन न्यायाधीशो पर कदाचार का महाभियोग लगा सकता है और दोनो सदनो की एक संयुक्त समिति उस अभियोग का निर्णय कर न्यायाधीशो को पृथक् कर सकती है । किन्तु आज तक के इतिहास मे ऐसा कभी नहीं हुआ।

दूसरे, उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीशो की संख्या संविधान द्वारा निश्चित नही की गई है। अत संसद विधि द्वारा उनका निश्चय करती है। इन दो बातो को छोडकर संसद किसी अन्य तरीके से न्यायालय पर नियन्त्रण रखने मे सक्षम नहीं है।

(४) न्यायाधीशो को उनकी प्रतिष्ठा तथा स्थिति बनाए रखने के लिए समुचित वेतन दिया जाता है। मुख्य न्यायाधीश का वेतन संसद के सदनो के अध्यक्षो अथवा प्रधानमन्त्री के वेतन के बराबर है, और अन्य न्यायाधीशो का उपाध्यक्षो के वेतन के समान है। इससे विदित होता है कि जापानी अपने न्यायाधीशो की स्थिति को प्रधानमन्त्री अथवा सदन के अध्यक्षों की स्थिति से कम गौरवान्वित नहीं समझते। फिर उनके वेतनो मे सम्पूर्ण कार्यकाल मे कोई कमी वृद्धि नही हो सकती, जिससे उन्हे मन्त्रियो की चापलूसी नही करनी पडती।

उपर्युक्त व्यवधानो से ज्ञात होता है कि जापानी प्रजाजन अपने न्यायालय की स्वतन्त्रता के लिए पर्याप्त सचेष्ट है, जिसके फलस्वरूप न्यायालय गत २० वर्षों से निष्पक्ष तथा स्वतन्त्र निकाय के रूप मे कार्य कर रहा है।

न्याय व्यवस्था की एक रूपता—न्याय व्यवस्था की एक रूपता जापानी न्यायपालिका की दूसरी विशेषता है। संविधान के अनुसार 'समस्त शक्ति उच्चतम न्यायालय तथा ऐसे अधीनस्थ न्यायालयों में स्थित है जो विधि द्वारा स्थापित किए जावेंगे।' इस प्रकार अमेरिका तथा भारत देशों की भांति न्याय व्यवस्था को एक सूत्र में संगठित किया गया है।

न्यायिक पुनरिक्षण—जापानी उच्चतम न्यायालय को पुनरिक्षण सम्बन्धी क्षेत्राधिकार प्राप्त है। संविधान ने सर्वोच्च न्यायालय को सरकार के कार्यों तथा संसद द्वारा निर्मित कानूनों की संवैधानिकता की जांच करने का अधिकार दिया है। संविधान के विपरीत होने पर वह सरकारी आदेश तथा कानूनों को अवैध घोषित कर सकता है।

उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीशों की नियुक्ति पर प्रजा का समर्थन—जापानी न्याय पद्धति की उल्लेखनीय विशेषता यह है कि उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीशों को अपनी नियुक्ति के लिए जनता का समर्थन प्राप्त करना होता है। यदि लोकमत निर्णय में उन्हें जनता का बहुमत प्राप्त न हो, तो उन्हें अपने पदों से पृथक कर दिया जाता है। इस प्रकार का समर्थन प्रत्येक दस वर्ष के अन्तर से प्राप्त करना अनिवार्य रखा गया है। इसके परिणाम स्वरूप न्यायाधीशों को स्वतन्त्र एवं निष्पक्ष होकर कार्य करना पड़ता है।

कार्यवाही की अगोपनीयता—साधारणत न्यायालयों की कार्यवाही गोपनीय न होकर सार्वजनिक होती है, जिससे जनता का उपस्थित होने तथा प्रत्येक न्यायाधीश के विचारों से अवगत होने का सुअवसर मिल जाता है। यदि न्यायाधीश समझें कि सार्वजनिक विचार विमर्श हानिप्रद होगी, तो वे सर्वसम्मति से उन्हें गुप्त भी रख सकते है।

निर्णय की अवधि—विश्व के अन्य देशों की अपेक्षा जापान में विवादों का निर्णय करने में कम से कम समय लगता है। यहां पर ६० प्रतिशत दीवानी तथा ८९ प्रतिशत फौजदारी मुकदमों का निर्णय अधिक से अधिक ६ माह में हो जाता है।

ज्यूरी व्यवस्था का प्रभाव—नूतन न्याय व्यवस्था में ज्यूरी का प्रभाव बड़ा खटकता है। पूर्वगामी शासन में ज्यूरी प्रथा थी किन्तु अब उसे समाप्त कर दिया गया है। ज्यूरी की व्यवस्था होने से न्याय की निष्पक्षता बढ़ती है, क्योंकि उसके सदस्य कार्यपालिका तथा न्यायपालिका, दोनों के प्रभाव से मुक्त होने के कारण निर्णय देने में अधिक स्वतन्त्र होते हैं।

9.

स्थानीय शासन तथा लोक सेवाएँ

Local Government and Public Services

अ—स्थानीय शासन

१—दूसरे विश्वयुद्ध से पूर्व तक स्थानीय शासन.—मेइजी शासन के प्रारम्भ तक प्राचीन सामत शाही प्रथा समाप्त करदी गई और सामन्तो के २५० क्षेत्र उनसे छीनकर केन्द्रीय सरकार के अधीन कर दिए गए। स्थानीय प्रशासन की दृष्टि से देश को क्षेत्रो मे (Prefectures) विभक्त किया गया, और प्राचीन गाव तथा कस्बो को मिलाकर नये कस्बे तथा नगर बनाए गए। १८८९ ९० मे जबकि नवीन ससद बुलाई जाने को थी, स्थानीय शासन से सम्बन्धित अनेक आधारभूत कानून लागू किए गए, जिनका ध्येय डाइट को स्थानीय प्रशासन पद्धति के निर्माण करने से रोकना था।[1] इस तथ्य की पुष्टि मे नोबूटाका ग्राइक लिखता है कि, मेइजी धनी वर्ग का आधारभूत दर्शन स्थानीय प्रशासन पर लोकप्रिय नियन्त्रण को रोकना तथा उस पर केन्द्रीय सरकार की शक्ति बनाए रखना था। अत स्पष्ट है कि सरकार स्थानीय शासन को पूर्ण रूपेण अपने अधीन रखना चाहती थी। समस्त सरकार केन्द्र के अधीन थी और क्षेत्रीय सरकारो को सीधे टोकियो से आदेश दिए जाते थे। स्थानीय शासन गृह मन्त्रालय के अधीन था, और गृहमन्त्री को अधिकार था कि वह स्थानीय पदाधिकारियो एव गवर्नरो को नियुक्त एव पदच्युत करे[2] क्षेत्रीय शासन का प्रमुख अधिकारी गवर्नर था, जो केन्द्रीय सरकार के प्रतिनिधि के रूप मे कार्य करता था। प्रधिशासनिक प्रशासन पर देख रेख रखने तथा आय व्ययक, करो तथा सार्वजनिक सम्पत्ति पर विचार करने और मत देने के लिए एक सभा होती थी जिसे जनता द्वारा निर्वाचित किया जाता था और जिसके सत्र भी प्रतिवर्ष बुलाए जाते थे, परन्तु उसकी वास्तविक स्थिति एक परामर्शदात्री सभा जैसी थी। यथार्थ मे, शासन का प्रमुख अधिकारी गवर्नर था। जो गृहमन्त्री के अनुमोदन पर शासन चलाता था। क्षेत्रीय सभा के सुझावो को मानना न मानना तथा उसके

1. See—G M Kahin : Major Govts. of Asia Page 183
2. Ibid, see also Harold zwik : Modern Govts P 735

निश्चित किए हुए कार्यों को प्रभावशील बनाना न बनाना उसके अधिकार मे था। उसे कानूनो तथा अध्यादेशो को लागू करने का भी अधिकार प्राप्त था।

क्षेत्रो के अन्तर्गत नगर कस्बे व ग्राम थे, जिनकी सख्या क्रमश १००, १४०० तथा १०,००० थी। नगर दो प्रकार के थे—एक तो वे जिनकी जनसख्या ६ लाख या अधिक थी, दूसरे वे जिनकी जनसख्या कम होती थी। नगरो का प्रशासन मेयर, नगर-सभा और नगर समिति के अधीन था। नगर-सभा का निर्वाचन जनता द्वारा वयस्क मताधिकार पर चार वर्ष के लिए किया जाता था। सभा मे अनुमानत ३० सदस्य होते थे।[3] नगर समिति का निर्माण सभा करती थी जिसमे १०-१५ सदस्य रखे जाते थे। यह एक स्थाई निकाय होती थी जो सभा की अनुपस्थिति मे कार्य करती थी।[4] प्रारम्भ मे मेयर की नियुक्ति गृह मन्त्रालय द्वारा की जाती थी, किन्तु प्रजातान्त्रिक आदर्शों के प्रसार होने पर उसे सभा नियुक्त करने लगी।

क्षेत्रीय सभा की तुलना मे नगर सभा की स्थिति अधिक सुदृढ थी। क्षेत्रीय सभा केवल एक परामर्शदात्री सभा थी, जबकि नगर सभा एक शक्तिशाली निकाय। इसके विपरीत क्षेत्रो का गवर्नर एक शक्तिशाली पदाधिकारी होता था, जबकि नगरो का मेयर अपेक्षाकृत शक्तिहीन होता था। नगर के प्रशासन मे मेयर तथा सभा दोनो का हाथ रहता था।

सन् १९२० के बाद मताधिकार के विस्तार करने पर ऐसी आशा की जाती थी कि स्थानीय शासन की सस्थाओ को पहले की अपेक्षा अधिक स्वायत्तता प्राप्त हो जावेगी,[5] परन्तु सन् १९३० के अनन्तर केन्द्रीय शासन पर सेना का प्रभाव पडने लगा। फलस्वरूप, लोकतन्त्र के विस्तार की प्रवृत्ति मे रोक लग गई और स्थानीय शासन पहले की अपेक्षा अधिक केन्द्रीकृत होगया।[6]

सक्षिप्त गत शासन मे प्रथम तो केन्द्रीय सरकार स्वय की प्रवृत्ति स्थानीय शासन को नियन्त्रित करने की रही, दूसरे, आय के साधनो के अभाव से भी इस शासन को केन्द्र सरकार की सहायता पर आश्रित रहना पडता था। वास्तव मे द्वितीय विश्वयुद्ध से पूर्व उसकी स्थिति सदैव दासतुल्य रही।

२. **युद्धोपरांत स्थानीय शासन व्यवस्था**—वर्तमान सविधान के लागू होने पर प्राचीन स्थानीय शासन व्यवस्था मे क्रांतिकारी परिवर्तन किए गए, जिसका एकमात्र कारण 'मैत्रिक सत्ता' का यह विश्वास था कि जापान म वास्तविक लोकतन्त्र शासन की स्थापना स्थानीय शासन इकाइयो को स्वायत्तता दिए बिना

---

3 See G M Kahin Ibid page 183
4 Ibid
5. Ibid, page 184-85
6 Ibid-85

कदापि न हो सकेगी।[7] अतः सन् १९४७ में स्थानीय संस्थाओं को गृहमन्त्रालय के नियन्त्रण से मुक्त कर दिया गया तथा यह भी घोषित किया गया कि स्थानीय लोकतन्त्र संस्थाओं के संगठन तथा कार्य संचालन सम्बन्धी नियम स्थानीय स्वायत्तता के आधार पर विनिश्चित किए जावेंगे[8] विचार विमर्श के लिए प्रत्येक क्षेत्र में एक सभा निर्मित होगी।[9] और लोक संस्थाओं के अधिकारियों की नियुक्ति प्रत्यक्ष लोक निर्वाचन के आधार पर की जायेगी[10]।

अधिकारों की दृष्टि से स्थानीय शासन की इकाइयों को विधि के अनुसार सम्पत्ति एवं शासनप्रबन्ध का अधिकार दिया गया और यह भी बताया गया कि उनके सम्बन्ध में वे स्वयं कानून निर्मित करेंगे। अन्त में यह भी प्रावधान रखा गया कि संसद किसी स्थानीय क्षेत्र की जनता की अनुमति लिए बिना उस क्षेत्र के लिए कोई कानून न बना सकेगी। शिक्षा तथा लोक-सेवा के कार्य भी इन संस्थाओं को दे दिए गए, जिससे जनता में लोकतन्त्र शासन के प्रति अभिरुचि उत्पन्न हो।

नवीन संविधान लागू होने पर 'स्थानीय स्वायत्तता कानून' (Local Autonomy Law) निर्मित किया गया। इसके पश्चात् कुछ और भी नियम पारित हुए जिनके आधार पर स्थानीय शासन का गठन एवं संचालन किया गया।

वर्तमान समय में जापान ४६ क्षेत्रों (Prefectures) में विभक्त है और प्रत्येक क्षेत्र को नगर, कस्बे तथा ग्रामों की प्रशासनिक इकाइयों में विभाजित किया गया है जिनकी संख्या क्रमशः ५५९, १९८९ तथा ८५० हैं।[11] प्रत्येक क्षेत्र, नगर, कस्बे तथा ग्राम की एक एक सभा होती है, जिसे उस इकाई अथवा क्षेत्र की जनता द्वारा प्रतिनिधि सभा की भांति ही निर्वाचित किया जाता है। ये सभायें क्षेत्रों में क्षेत्रीय सभा (Prefectural Assemblies) तथा नगर, कस्बों व ग्रामों में नगरपालिकायें (Municipalities) कहलाती हैं। क्षेत्रीय सभा का प्रमुख गवर्नर कहलाता है जिसे उस क्षेत्र की जनता द्वारा निर्वाचित किया जाता है इसी भांति नगरपालिका के प्रमुख मेयर, का निर्वाचन होता है, क्षेत्रीय प्रशासन को केन्द्रीय नियन्त्रण से तथा नगरपालिका प्रशासन को क्षेत्रीय नियन्त्रण से मुक्त रखा गया है, परन्तु स्थानीय प्रशासन को अधिक लोकतान्त्रिक बनाने के लिए उपरोक्त सभी इकाइयों के प्रशासन को निम्न विधियों से जनता के नियन्त्रण में रखा गया है—

(1) मतदाताओं को यह अधिकार दिया गया है कि वे स्थानीय संस्थाओं के पदाधिकारियों को, यदि वे सफल सिद्ध न हों, वापस बुला सकें। इन पदाधि-

7 Ibid 85
8 Art 92
9 Art 93
10 Ibid
11 Statesmen year Book 1965 66 page 1182

कारियों में गवर्नर, मेयर तथा वे अन्य सदस्य सम्मिलित हैं, जिनको विधि द्वारा निर्वाचित किया जाता है।

(ii) स्विस नागरिकों की भांति जापानी प्रजाजनों को प्रस्तावाधिकार की शक्ति दी गई है, जिसके द्वारा वे नए कानून बनवा सकते है तथा प्राचीन कानूनों में परिवर्तन भी करवा सकते हैं।

(iii) यदि कोई पदाधिकारी नागरिकों के विरुद्ध कोई गलत कार्यवाही करे तो उन्हे यह अधिकार है कि वे उसके खिलाफ कानूनी कार्यवाही कर सकें।

इतना होते हुए भी आइक (Ike) का मत है कि जापान की स्थानीय शासनिक इकाइयों ने अभी तक स्वायत्तता प्राप्त नहीं की है। केन्द्रीय सरकार ने स्थानीय प्रशासन पर अभी तक किसी न किसी रूप में प्रभाव जमा रखा है क्योंकि सन् १९४९ में स्थापित स्थानीय स्वायत्तता अभिकरण (Local Autonomy Agency) गृहमन्त्रालय की भांति ही उस पर नियन्त्रण रख रहा है। उदाहरण स्वरूप गवर्नरों तथा अधिकारियों को निर्देशन देना, उनकी राजधानी में बैठक बुलाना, उनके लिए आदर्श कानूनों के प्रारूप बनाना, स्थानीय समस्याओं पर परामर्श देना, आदि।[12] यही लेखक आगे चलकर उन कारणों पर भी प्रकाश डालता है जिनके परिणाम स्वरूप जापान की स्थानीय प्रशासनिक संस्थाएं वास्तविक स्वायत्तता का उपभोग नहीं कर सकी है। वह लिखता है कि —

(१) अभी तक जापान के नागरिकों में सामुदायिक विचारों का अभ्युदय नहीं हो पाया है जिससे उनमें अभी नागरिक स्वाभिमान की कमी है और वे राजनीतिक क्षेत्र में बहुत कुछ उदासीन रहते है।

(२) बहुत दिनों तक केन्द्रीय प्रशासन के कठोर नियन्त्रण में रहने से उनमें पहल करने की शक्ति मृतप्राय हो गई है। स्वायत्तता के प्राप्त होने पर भी वे अभी तक प्रत्येक कार्य के निदेशन के लिए केन्द्र की ओर देखते है और उसी के नेतृत्व को पसन्द करते हैं।

(३) बेकारी, सामाजिक सुरक्षा तथा आर्थिक नियोजन आदि अनेक ऐसे विषय हैं जिनका हल राष्ट्रीय स्तर पर विचार विमर्श के अनन्तर ही सम्भव है।

(४) आर्थिक स्त्रोतों के अभाव के कारण भी स्थानीय सरकारों को केन्द्रीय सरकार की ओर उन्मुख होना पड़ता है। अतः आर्थिक सहायता के साथ साथ केन्द्रीय सरकार का स्थानीय प्रशासन पर नियन्त्रण करना नितान्त स्वाभाविक ही है।

ब—लोक सेवाएं

(१) द्वितीय विश्वयुद्ध के पूर्व—उत्तरदायी शासन पद्धति की सफलता के लिए एक सक्षम और स्वतन्त्र लोक सेवा की आवश्यकता होती है, जिसमें ऐसे

12 Kahin Major Governments of Asia, pp 184 185

व्यक्ति हो जो अपने दीर्घ प्रशासनीय अनुभव के आधार पर बदलते हुए मन्त्रियो को उचित परामर्श दे सके। १९ वी शताब्दि के उत्तरार्द्ध मे जापान में ऐसे ही व्यक्तियो की नियुक्ति की आवश्यकता अनुभव होने लगी। फलस्वरूप १८७३ मे वहाँ के गृहमन्त्री ओकूबो (Okubo) ने लोक-सेवाओ का सगठन किया। यह सगठन जर्मन लोक सेवा के आधार पर किया गया था।

मेइजी शासन की स्थापना मे समुराई वर्ग (Lower Samurai) और विशेषकर पश्चिम जापान के नेताओ का प्रमुख हाथ रहा था।[13] अत सरकारी सेवाओ मे इन दोनो का ही प्रतिनिधित्व था। कालान्तर मे एक सुव्यवस्थित लोक सेवा पद्धति की माँग होने लगी, क्योकि जनता को ऐसा विश्वास होने लगा था कि सेवाओ मे योग्य व्यक्तियो की अपेक्षा पदाधिकारियो के सम्बन्धियो को ही प्रधानता दी जाती है। फलस्वरूप १८८५ मे एक नागरिक सेवा बोर्ड। (Civil Service Board) स्थापित किया गया, जिसने सर्व प्रथम १८८७ मे द्वितीय तथा तृतीय श्रेणी के कर्मचारियो की नियुक्ति के लिए परीक्षाए लीं। चयन का आधार योग्यता रखा गया। इस तथ्य के आधार पर यह कहना नितान्त युक्तिसगत होगा कि जापान म लोक सेवाओ का प्रारम्भ १८८७ मे हुआ।

द्वितीय विश्वयुद्ध के पूर्व जापान की लोक सेवाए दो भागो मे विभक्त थी—(१) उच्च लोक-सेवा तथा (२) साधारण लोक सेवा। (१) उच्च लोक सेवा के दो वर्ग थे—(i) प्रथम श्रेणी (Shinnin) इस वर्ग के कर्मचारी उच्चपदो पर नियुक्त किए जाते थे, जैसे मन्त्री, उपमन्त्री, उच्चन्यायाधीश और राजदूत। (ii) द्वितीय श्रेणी इस वर्ग के पदाधिकारी चोकूनिन (Chokunin) कहलाते थे और पहली श्रेणी के पदाधिकारियो की अपेक्षा छोटे समझे जाते थे।

(२) साधारण लोक-सेवा के कर्मचारी तृतीय श्रेणी के कर्मचारी थे जो सोनिन (Sonin) कहलाते थे।

तकनीकी शिक्षा को छोड़कर उच्चसेवा मे लिए जाने वाले व्यक्तियो की नियुक्ति योग्यता परीक्षा के आधार पर की जाती थी। परीक्षा समिति मे अनुमानतः ९० सदस्य थे, जो टोकियो राजकीय विश्वविद्यालय के विधि विभाग के सदस्य होते थे। परीक्षा प्रतिवर्ष टोकियो मे होती थी। इस परीक्षा मे सम्मिलित होने के लिए विधि सम्बन्धी योग्यता का रखना अनिवार्य था। यद्यपि परीक्षा मे कई हजार विद्यार्थी प्रतिवर्ष सम्मिलित होते थे, किन्तु उत्तीर्ण होने वालो की सख्या बहुत कम थी। उत्तीर्ण परीक्षार्थियो की एक सूची तैयार की जाती थी, जिसमे से किसी को भी नियुक्त किया जा सकता था। नियुक्तियो मे प्रभावशाली व्यक्तियो का हाथ रहता था। उच्चपदा पर टोकियो विश्वविद्यालय के स्नातक ही नियुक्त

13. Kahin Major Governments of Asia; page, 177

होते थे, जिससे विश्वविद्यालय की प्रतिष्ठा तो बढ़ी किन्तु उसके साथ साथ नियुक्त होने वाले स्नातकों मे अहंकार तथा दंभ की मात्रा मे वृद्धि हुई उनकी वृत्तियां तामसी होगई और व्यवहार अप्रिय। कार्यक्षमता की कमी के साथ वे भ्रष्टाचारी भी होते थे।

२ द्वितीय विश्वयुद्ध के अनन्तर—मैत्रिक सत्ता का आधिपत्य स्थापित होने पर, सार्वजनिक सेवा पद्धति मे अनेक परिवर्तन किए गए, क्योंकि विदेशी इस पद्धति को अधिक लोकतांत्रिक तथा नियमित बनाना चाहते थे। अपने उद्देश्यों की पूर्ति के लिए सर्वप्रथम उन्होंने देश के लिए निर्मित किए जाने वाले संविधान में ३ धाराओं का प्रावधान किया। धारा १५ के अनुसार जापानी नागरिकों को अपने सार्वजनिक अधिकारियों के चयन करने तथा उन्हें अपने पदों से पदच्युत करने का अविच्छेद अधिकार दिया गया।[14]साथ ही यह भी कहा गया है कि सार्वजनिक अधिकारी सम्पूर्ण समाज के सेवक हैं किसी समूह विशेष के नहीं।[15]इस धारा को उपस्थित कर उन्होंने उस प्राचीन विचार का उन्मूलन किया जिसके आधार पर सार्वजनिक कर्मचारी सम्राट के सेवक कहलाते थे। धारा १७ के अनुसार यह व्यवस्था की गई कि यदि किसी सार्वजनिक अधिकारी के अवैध कार्य से किसी नागरिक को हानि पहुंचे तो वह उसकी क्षतिपूर्ति के लिए कानूनी कार्यवाही कर सकेगा। इस प्रकार सार्वजनिक सेवाओं को जनता के नियन्त्रण मे रखकर उन्होंने उसे अधिक लोकतान्त्रिक बनाया। दूसरे, सेवाओं के पुनर्गठन के सम्बन्ध मे परामर्श देने के लिए अमेरिका से एक मिशन बुलाया गया, जिसके परामर्श पर सन् १९४७ मे संसद द्वारा राष्ट्रीय सार्वजनिक सेवा विधि (National Public Service Law) पारित किया गया। इसका लक्ष्य जनता को ऐसी लोकतान्त्रिक एवं सुयोग्य शासन प्रणाली देना था, जो सरकारी कार्य को सुचारु रूप से चला सके और साथ ही कर्मचारियों को भी लाभान्वित कर सके। इस विधि के अनुसार १९४९ मे राष्ट्रीय कार्मिक अधिकार (National Personnel Authority) का गठन हुआ, जिसे मन्त्रिमंडल के अधीन रखा गया। अधिकार मे तीन कमिश्नर रखे गए, जिनके वेतन भत्ते मन्त्रियों के समान ही है। उनकी नियुक्ति मन्त्रिमंडल की सिफारिश पर संसद करती है। सर्वप्रथम वे चार वर्ष के लिए नियुक्त किए जाते हैं, परन्तु वे १२ वर्ष से अधिक अपने पदों पर किसी दशा मे स्थिर नहीं रखे जाते। तीन कमिश्नरों मे से किसी एक को मन्त्रिमंडल द्वारा अधिकार का सभापति नियुक्त किया जाता है। विधि के अनुसार सेवाओं के लिए योग्यताओं परीक्षाओं पदोन्नति, स्थानान्तरण, सेवा निवृत्ति, अवकाश वेतन, कार्य घंटे आदि के सम्बन्ध

---

14 धारा १५

15 धारा १६

मे नियम बनाना, पदो का वर्गीकरण करना तथा परीक्षाओ का लेना प्राधिकार का दायित्व रखा गया है।

अपने कर्तव्यो का निवहन करते हुए प्राधिकार ने जापान मे योग्यता परीक्षाओ का शुभारम्भ कर दिया। प्रत्येक नागरिक को नियमानुसार उनमे सम्मिलित होने का अधिकार है। १९४७ से पूर्व उच्च सेवाओ मे केवल टोकियो विश्वविद्यालय के स्नातक ही लिए जाते थे, किन्तु अब उनमे अन्य विश्वविद्यालयो के स्नातक भी नियुक्त होते हैं, यद्यपि बाहुल्य अब भी टोकियो विश्वविद्यालय के स्नातको का है।[16] परीक्षा मे उत्तीर्ण होने पर इन प्रत्याशियो को सेवाओ मे प्रवेश करते समय विधि द्वारा विनिश्चित शपथ लेनी पड़ती है। सन् १९५० मे प्राधिकार ने जो परीक्षाए ली उनमे उपमन्त्री से लेकर सेक्शन के प्रमुख तक को अनिवार्य रूप से सम्मिलित होना पडा। परीक्षाओ के परिणाम निकलने पर १० प्रतिशत से अधिक कर्मचारियो को उनके पदो से पृथक् कर दिया गया। प्राधिकार के इस कार्य की जापान मे बडी निन्दा की गई और राज कर्मचारियो ने इसे अपनी प्रतिष्ठा का प्रश्न बना लिया। इस सघर्ष के परिणामस्वरूप उसकी शक्ति का निरन्तर ह्रास होता जा रहा है। आइक का मत है कि मैत्रिक सत्ता द्वारा किए गए सुधारो मे अधिकाश सफल हुए, यदि कोई सबसे कम सफल हुआ है तो वह सार्वजनिक सेवा के क्षेत्र मे किया गया उपरोक्त सुधार है। यही लेखक इस असफलता के दो कारण बतलाता है—प्रथम तो यह कि मैत्रिक सत्ता ने जापान के प्रशासन पर सैनिक अधिकारियों का कोई प्रत्यक्ष प्रभाव नही जमने दिया, और दूसरा यह कि नौकरशाही की चारो ओर से ऐसी घेराबन्दी की गई कि उसका सुधार करना कठिन हो गया।[17]

---

16 G M Kahin Ibid page 179

17. 'Of all the branches of the Japanese government, the civil service was probably the least affected by occupatoin sponsered reforms This resulted partly from the fact that the occupation avodied direct military government and instead worked through the existing Japanese govern ment and partly from the fact that the bureaucracy was strongly entrenched, making reforms difficult'.—Ike From : Kahin : Major Governments of Asia, page 179

10.

राजनैतिक दल
(Political Parties)

द्वितीय विश्वयुद्ध से पूर्व

१ प्रारम्भ—दल पद्धति प्रजातन्त्र की आधार शिला है। जहा उत्तरदायी शासन व्यवस्था है वहा दलपद्धति का होना अनिवार्य है। दलों के अस्तित्व के बिना लोकतन्त्र जीवित नही रह सकता, इसीलिए लोकतन्त्र प्रशासन को दलीय प्रशासन भी कहा जाता है। जापान मे भी उत्तरदायी शासन है। अत देश मे दल पद्धति का विकसित होना स्वाभाविक ही है। किन्तु यथार्थ मे तोकूगावा शासन क अन्त तक देश मे सच्चे राजनैतिक दलो का नितात अभाव था। उन्नीसवी सदी के उत्तरार्ध म पश्चिमी देशो के सम्पर्क मे आने के कारण, राजनैतिक दल पद्धति के विचार पनपने लगे और १८७० मे अनेक राजनैतिक क्लब और सघ बन गए,[1] जिनके सदस्य नगर, कस्बा और गाव सभी जगहो के थे। १८७३ मे कोरिया के प्रश्न पर देश दा दलो में विभक्त हो गया। कुछ लो यह चाहते थे कि जापानी सरकार को कोरिया के विरुद्ध कठोर एवम् दमनकारी नीति का अनुसरण करना चाहिए और कुछ इस प्रकार की नीति का विरोध करते थे विरोध करने वालो का मत था कि देश की शक्ति का उपयोग निर्माण कार्यो मे होना चाहिए, न कि सघर्ष पर। ऐसे व्यक्तियो न, जो शाति के उपासक थे, एक दल का सगठन किया, जिसका नाम देश भक्त सार्वजनिक दल (Patriotic Public Party) रखा गया। इस दल का नेता ईतागाकी (Etagaki) था। यह पहला अवसर था जब कि जापान में किसी राजनैतिक दल का गठन हुआ। इस दल का लक्ष्य जनता के अधिकारो को प्राप्त करने के लिए सघर्ष चलाना था। सन् १८७४ में ईतागाकी और उसके साथियो ने सरकार से लोकप्रिय प्रतिनिधि सभा की स्थापना की माग की। सरकार इस दल की नीति को पसन्द नही करती थी। अत उसने उस पर अनेक प्रतिबन्ध लगा दिए जिससे, उसकी प्रगति तो रुक गई, परन्तु उसकी लोकप्रियता मे कोई कमी न आ सकी। इस दशा म सम्राट ने यह अनुभव किया कि देश के शासन म सुधार करना अनिवार्य है। अत १२ अक्टूबर १८८१ को उसने यह

1 See G. M. Kahin Major Government of Asia, page 192

घोषणा की कि १८९० तक जापान मे लोकप्रिय प्रतिनिधि सभा की स्थापना करदी जावेगी ।

उपर्युक्त घोषणा के ६ दिन पश्चात उदार दल (Liberal Party) के नाम से एक दल की स्थापना की गई, जिसका प्रधान नेता इतागाकी था। इतागाकी बडा विचारशील व्यक्ति था। उस पर रूसो (Rousseau), मोन्टेस्क्यू (Montesquieu) तथा वोल्टयर (Voltaire) आदि फ्रासीसी विचारको का बडा प्रभाव था। यह दल ससदीय शासन की स्थापना पर बहुत बल देता था। अत यह कहना नितान्त समीचीन होगा कि जापान मे १८८१ के अनन्तर ही राजनीतिक दलो का विकास प्रारम्भ हुआ।

१४ मार्च, १८८१ को काउन्ट ओकूमा (Count Okuma) ने एक नए दल का सगठन किया। पहले वह जापान मे अर्थमन्त्री के पद पर नियुक्त था, परन्तु अन्य मन्त्रियो से मतभेद हो जाने के कारण, उसने त्यागपत्र दे दिया। यह दल अदम स्मिथ (Adam Smith), रेकार्डो (Recardo), बेन्थम जॉन (Bentham), स्टूअर्ट मिल (John Stuart Mill) आदि ब्रिटिश विचारको से प्रभावित था। इस दल के अधिकाश सदस्य शिक्षित एव सम्पन्न थे। यह दल प्रगति मे विश्वास रखता था और वैध राजसत्ता स्थापित करने के पक्ष मे था।

१८ मार्च १८८३ को राज्य शक्ति के समर्थको तथा अनुदार व्यक्तियो ने राजसी दल (Imperial Party) का निर्माण किया। इसके सदस्य जर्मन विचार-धारा से प्रभावित थे और राज्य की शक्ति को सुदृढ कर उसे आगे बढाना चाहते थे।

उपर्युक्त दलो की स्थापना से जापानी प्रजाजनो मे चेतना आई और जागृति फैलने लगी, परन्तु वे आपसी सघर्षो तथा सरकारी दमन चक्र के कारण स्थाई न रह सके। राजनीतिक आलोचना से अप्रसन्न होकर १८८३ मे सम्राट ने राजनैतिक दलो के भग करने की आज्ञा दे दी। १८८४ मे उदारदल और राजसी दल समाप्त हो गए और लगभग इसी समय मे काउन्ट ओकूमा की प्रोग्रेसिव पार्टी भी समाप्त करदी गई।

इस प्रकार उपरोक्त सभी दल भग हो गए, किन्तु दलीय परम्परा की जडें स्थिर बनी रहीं। नवीन विधान के अनुसार १८८८ में ससद के निर्वाचन हुए जिनमे राजनैतिक दलों ने भाग तो लिया, किन्तु किसी एक को स्पष्ट बहुमत नहीं मिल सका। इससे ज्ञात होता है कि ससद मे कोई भी दल सगठित रूप मे न था। यही कारण था कि लगभग प्रथम तीन वर्षों मे यामागाता, मत्सुकाता और इतो, तीन

प्रधानमन्त्रियों के नेतृत्व मे मन्त्रिमडल बने । १८९० से १९०० तक जापान के राजनैतिक दलों की दशा बडी अस्त व्यस्त रही। सन् १८८९ मे उदार एव प्रगतिशील दलो ने मिलकर एक नया दल बना लिया जिसका नाम सवैधानिक उदार दल (Constitutional Liberal Party) रखा गया। दल के निर्माण होने पर प्रथम बार दलीय मन्त्रिमडल बना, किन्तु वह भी अधिक स्थाई न रह सका। सुधार व उदार दल फिर से पृथक् पृथक हो गए।

सन् १९०० मे सेयूकाई (Seiyukai) अथवा राष्ट्रीय मित्र दल नामक दल का सगठन हुआ जिसका अध्यक्ष इतो था। कुछ दिनो बाद वह प्रधानमत्री बन गया। इस दल ने सबसे अधिक काल तक कार्य किया। सन् १९१० सेयूकाई दल के विरोध मे कोकूमिन्टो (Kokumınto) नामक दल बना जिसका उद्देश्य उत्तरदायी सरकार की स्थापना करना था। २३ दिसम्बर १९१३ को रिकेन दोषी काई (Rikken Dsohikai) नामक दल बना।

सन् १९१५ मे कोकूमिन्टो और रिकेन दोषीकाई के गठबन्धन से एक नए दल का जन्म हुआ जिसे केन सेईकाई (Ken Seikai) कहा गया। इस प्रकार जापान की राजनीति मे नूतन दल बनते, बिगड़ते और मिलते चले गए लेकिन कोई एक दल पूर्ण बहुमत के आधार पर सरकार न बना सका वास्तविक दलीय सरकार का निमाण १९१८ मे हुआ, किन्तु वह भी स्थिर न रह सकी। सन् १९२० मे राजनैतिक दल अपनी शक्ति की चरम सीमा पर पहुच गए और ऐसा प्रतीत होने लगा कि अब वे पूर्ण उत्तरदायी एव स्थिर सरकार बनाने मे समर्थ होगे।[2] किन्तु स्थिति मे कोई उल्लेखनीय सुधार न हुआ और दलीय स्पर्द्धा चलती रही जिसके परिणामस्वरूप कोई सरकार स्थाई न बन सकी और जनतन्त्र से आस्था डिगने लगी। सन् १९३१ मे मुकदेन की घटना के अनन्तर सैनिक अधिकारियो का सरकार पर नियन्त्रण स्थापित हो गया। इस प्रकार दलीय शासन का अन्त हुआ।

सक्षिप्त द्वितीय विश्वयुद्ध से पूर्व जापान मे राजनैतिक दलो की स्थिति बडी अस्थिर एव विचित्र थी। आइक का मत है कि १९४० के पूर्व वामपन्थी तथा दक्षिणपथी, सभी राजनैतिक दलों की स्थिति बड़ी दयनीय रही और सन् १९४० मे वे राजनैतिक मच से अन्तर्निहित हो गए। इसके उपरान्त साम्राज्यीय शासन

2. 'The political Parties reached the Zenith of their power in the 1920, and it appeared for a time that a full fledged parliamentry form of government might eventually emerge' —Ike

Kahin : Major Governments of Asia. P. 193.

सहायक संघ का निर्माण हुआ (Imperial Rule Assistance Association), जिसमे सभी राजनैतिक दल तथा अनेक सगठन सम्मिलित थे।[3]

२ द्वितीय विश्वयुद्ध के अनन्तर—सन् १९४५ मे जापान के आत्मसमर्पण के पश्चात पुराने दक्षिणपथी राजनीतिज्ञ, जिन्होंने युद्ध के समय मे अपने अमान्य गुट बना रखे थे, खुले रूप मे एकत्रित होने तथा दलो के पुनर्गठन मे सफल हुए। प्रारभ मे तो इस प्रकार के तथा–कथित सैंकडो दल बने, किन्तु अत में केवल दो मुख्य दल रह गए—उदार दल (The Liberal Party Jiyuto) तथा प्रगतिशील दल (Progressive Party Shimpoto) इस समय मे वामपन्थी भी सक्रिय थे। असाम्यवादी वामपन्थी सामाजिक लोकतान्त्रिक दल (Social Democratic Party Nihon Shakaito) का गठन करने मे समर्थ हुए। साम्यवादियो ने जो १९४५ से पूर्व वैध रूप से सगठित न हो सके थे अब जापानी साम्यवादी दल (Japanese Communist Party Nihon Kyosanto) बनाने तथा उसे वैध रूप देने मे बडी तत्परता दिखलाई। इस दल का नेतृत्व ऐसे माने हुए साम्यवादी नेताओ के आधीन था जो अभी जेल से छूटे थे अथवा विदेशो से लौटे थे। इसी काल में एक छोटा सहकारी दल और बनाया गया जिसमे ससद के ऐसे सदस्य थे जो गावो का प्रतिनिधित्व करते थे। और जिनकी रुचि सहकारी आन्दोलन मे थी।[४]

समर्पण के पश्चात् पहला राष्ट्रीय चुनाव अप्रेल १९४६ मे हुआ। इस चुनाव मे निम्न सदन मे जियूतो तथा शिम्पोतो, दोनो दलो ने मिलाकर २३४ स्थान प्राप्त किए, जबकि सामाजिक जनतन्त्र दल को केवल १३ स्थान मिले। एक वर्ष पश्चात होने वाले निर्वाचन मे सामाजिक जनतन्त्र दल के स्थान बढकर १४३ हो गए जिसके फलस्वरूप प्रतिनिधि सदन मे यह सबसे अधिक स्थान प्राप्त करने वाला दल था। अत इसने नवीन जनतन्त्र दल, जो पहले प्रगतिशील दल कहलाता था, के साथ मिल कर मिलीजुली सरकार बनाई।[५] इसके पश्चात् १९५५ तक ४ निर्वाचन और हुए जिससे ज्ञात होता है कि इस काल मे स्थाई सरकारें न बन सकी। विभिन्न दलो के सगठन मे भी परिवर्तन होता रहा। फिर भी जनवरी सन् १९४९ से फरवरी सन् १९५५ तक उदारदल की सरकारें निरन्तर बनती रहीं। १९५५ मे उदार प्रजातान्त्रिक दल को भारी बहुमत से विजय प्राप्त हुई, और इसकी यह प्रतिष्ठा भविष्य मे भी बनी रही, जो निम्न सारिणी से स्पष्ट है —

3 See Kahin Ibid P. 195

4. See, Kahin Ibid P 195

5 Ibid

प्रतिनिधि सभा मे विभिन्न दलो की स्थिति (सन् १९५५ से—१९६५ तक)

	१९५५	१९५८	१९६०	१९६३	१९६५*
उदार प्रजातान्त्रिक दल Liberal Demo Party	२९९	२९८	३०१	२९४	२८६
समाजवादी दल Socialist Party	१५४	१६७	१४०	१४४	१४५
प्रजातान्त्रिक समाजवादी दल Democratic Socialist Party	—	—	१६	२३	२३
साम्यवादी दल Communist Party	२	१	३	५	४
अन्य दल	६	१	—	—	—
स्वतन्त्र Independants	३	—	६	१	२
रिक्त स्थान	३	—	—	—	७
कुल योग	४६७	४६७	४६६	४६७	४६७*

उपर्युक्त सारिणी से स्पष्ट है कि जापान के राजनैतिक दल पश्चिमी देशो के दलो की भाति सुसगठित नही हैं। उनकी नीतियो मे भी कोई विशेष अन्तर नही दिखलाई पडता जिसका कारण है अनेक दलो का होना। वर्तमान समय मे दलो की सख्या कम अवश्य होने लगी है जिससे यह आशा की जा सकती है कि निकट भविष्य मे वे अधिक सगठित होकर अपनी नीति निर्धारण मे स्पष्टता व स्थिरता ला सकेंगे।

३ वर्तमान प्रमुख राजनैतिक दल*—वर्तमान समय मे जापान मे तीन प्रमुख राजनैतिक दल हैं—

(१) उदार प्रजातान्त्रिक दल, (२) समाजवादी दल, तथा (३) प्रजातान्त्रिक समाजवादी दल।

* The Statesman's Year-book 1966–67, P. 1195

* *Composition of the Political parties in the 49th Extrah ordinary Session of the Diet held on July 22, 1965*
Ref. No 2-Bl (Aug. 65) Facts About Japan Public Information Bureau, Ministry of Foreign Affairs Japan.

* On the basis of bulletin No. 2-Bl (Aug 65), Facts About Japan, Public Information Bureau, Ministry of Foreign Affairs, Japan

(१) उदार प्रजातान्त्रिक दल—उदार प्रजातान्त्रिक दल, जो आजकल प्रधानमन्त्री साटो के नेतृत्व में शासनारूढ है, का जन्म १९ नवम्बर, १९५५ को हुआ था। इस दल का उदय रूढ़ीवादी गुटों के घरेलू तथा अन्तर्राष्ट्रीय विषयों के प्रारम्भिक विचारों के विलय का परिणाम है। इस दल की नीति निम्न सिद्धान्तों पर आधारित है—

(i) दोष रहित प्रशासन;

(ii) शैक्षणिक तथा तकनीकी विकास,

(iii) विदेशी व्यापार में वृद्धि तथा नियोजित औद्योगिक प्रगति

(iv) औद्योगिक शान्ति तथा श्रमिक कल्याण और राष्ट्रीय आधार पर विस्तृत सामाजिक सुरक्षा का लागू करना।

(v) संयुक्त राष्ट्रसंघ से निकटतम सम्बन्ध रखने वाली कूटनीति निर्धारित करना, जिससे एशिया शेष विश्व के समीप आ सके।

(२) समाजवादी दल—समाजवादी दल का गठन अक्टूबर सन् १९५५ में मोसाब्यूरो सुजूकी Mosaburo Suzuki) की अध्यक्षता में हुआ। इससे पूर्व यह दल दक्षिण पन्थी तथा वामपन्थी समाजवादी गुटों में विभक्त था। इस दल के लक्ष्य इस प्रकार हैं —

(i) जापान की विदेशी नीति का पुनर्स्थापन करना एवं उसे सुदृढ़ बनाना, जिससे रूस, चीन व अमरीका के साथ अनाक्रामक तथा सामूहिक सुरक्षासंधि के निर्माण पर विशेष बल दिया जा सके।

(ii) वर्तमान सुरक्षा शक्ति का विघटन तथा प्रजातान्त्रिक राष्ट्रीय पुलिस का नव निर्माण।

(iii) जनतन्त्र की स्थापना करना तथा जन हितकारी एवं सांस्कृतिक राज्य की स्थापना के लिए बड़े बड़े उद्योगों व आर्थिक संस्थाओं का समाजीकरण करना।

(iv) बेरोजगारी दूर करने के लिए भूमि का विकास करना।

(३) प्रजातान्त्रिक समाजवादी दल—समाजवादी दल के असन्तुष्ट दक्षिणपन्थी सदस्यों ने इस दल का निर्माण २४ जनवरी सन् १९६० को किया। इस दल की नीति इस प्रकार है।

(i) पूंजीवाद तथा सर्वाधिकार वादी वाम एवं दक्षिण पंथियों का विरोध करना।

(ii) व्यक्ति की प्रतिष्ठा का सम्मान करना।

(iii) स्वतन्त्र विदेशी नीति का अनुसरण करना।

(iv) नियोजित अर्थ व्यवस्था तथा समाजवादी साधनो द्वारा लोक कल्याणकारी राज्य की स्थापना करना।

उपर्युक्त बहुसख्यक दलो के अतिरिक्त जापान मे साम्यवादी दल भी है जिसकी स्थापना सन् १९२२ मे हुई थी। किन्तु द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद तक इसे सरकारी मान्यता प्राप्त न हो सकी। इस दल ने सर्वाधिक प्रगति १९४९ मे की जबकि इसे प्रतिनिधि सदन मे ३५ स्थान मिले। वर्तमान ससद के दोनो सदनो मे इसे केवल चार-चार स्थान प्राप्त हैं।

४ राजनैतिक दलों की विशेषताएं—जापान के राजनैतिक दलो के विकास, उद्देश्यो एवम् निर्वाचनो के अनुशीलन के अनन्तर यह आवश्यक है कि हम उनकी विशेषताओ पर भी विहगम दृष्टिपात करें। सक्षेप मे जापान की दलीय पद्धति मे निम्न विशेषताए देखी जाती हैं—

(१) जापान की दलीय पद्धति पर वहा की भौगोलिक दशाओ का गहरा प्रभाव रहा है पहले बताया जा चुका है कि समस्त देश क्षेत्रो मे विभक्त है और प्रत्येक क्षेत्र से प्रतिनिधि ससद के लिए निर्वाचित किए जाते हैं। जापानी दलों के जन्म और विकास मे इन क्षेत्रो का महत्वपूर्ण योग रहा है। दलो के जन्मदाताओ पर अपने क्षेत्र का प्रभाव पडना नितान्त स्वाभाविक ही था। अत वहा के राजनैतिक दलो का दृष्टिकोण अधिकाश मे क्षेत्रीय रहता है, किन्तु वर्तमान समय मे प्रत्येक दल को जीवित रहने के लिए यह परमावश्यक है कि उसका क्षेत्र एव उसके विचार राष्ट्रीय हो।

(२) १९४७ से पूर्व जापान एक धार्मिक राज्य था, धर्म निरपेक्ष नहीं। शिन्टो धर्म मे आस्था होने के कारण राज्य उसके प्रचार एव प्रसार मे पर्याप्त योग देता था। जनता मे भी बौद्ध, शिन्टो, ईसाई आदि अनेक धर्म फैले हुए थे किन्तु राजनैतिक दलो का निर्माण वहा धर्म के आधार पर कभी नहीं हुआ, जैसा कि एशिया के अन्य देशो, भारत, पाकिस्तान, इण्डोनेशिया आदि, मे हुआ।

(३) जापान की दलीय पद्धति की एक यह भी विशेषता है कि वहा के दलो की क्षेत्रीय शाखाओ पर केन्द्र मे स्थित मुख्य शाखा का पूर्ण नियन्त्रण एव अनुशासन रहता है।[6] कभी कभी तो यह नियन्त्रण बड़ा कठोर रूप धारण कर लेता है देश के सभी राजनैतिक दलो के प्रधान-कार्यालय टोकियो मे बने हुए हैं, जहा से वे अपनी शाखाओ को सञ्चालित करते रहते हैं।[7]

(४) जापान की राजनीति मे वहा के सरकारी भृत्यो का बड़ा हाथ रहता है। ये भृत्य अपनी सरकारी नौकरियो से त्यागपत्र देकर दलो मे सम्मिलित हो

6 Quigly and Turner . The New Japan
7. See, Kahin : Ibid, Page 200.

जाते हैं। दल विशेष के सदस्य बनने पर वे ससद के होने वाले निर्वाचनो में भाग लेते हैं। सन् १९५८ मे ऐसे सफल उम्मीदवारो की सख्या अनुमानत ८६ थी। दल की सरकार बनने पर उन्हे मन्त्रिमण्डल मे भी सम्मिलित कर लिया जाता है। सन् १९६० मे ऐसे ९ मन्त्री थे।

(५) दलीय पद्धति के निर्माण काल से ही जापान में दलो की सख्या बहुत अधिक रही है। सन् १८८१ मे, जब दलो की उत्पत्ति हुई ही थी, उनकी सख्या अनुमानत ३६० थी, जो द्वितीय विश्वयुद्ध के पश्चात् बढकर लगभग १००० हो गई। यही कारण है कि वहा के दलो मे उचित सगठन का अभाव है। ब्रिटेन व अमरीका की भाति यहा दो प्रमुख दल भी नही बन पाये हैं, जिनका होना ससदीय प्रणाली के लिए आवश्यक है।

(६) यद्यपि जापान मे राजनैतिक दलो की उत्पत्ति पश्चिमी सभ्यता के सम्पर्क का परिणाम है, परन्तु उनका स्वरूप जापानी है।

(७) जापान के राजनैतिक दलो की उल्लेखनीय विशेषता यह है कि वहां के दलो का विकास मुख्यत आर्थिक समस्याओ को लेकर हुआ है, जैसे पू जी और श्रम का सघर्ष अथवा कृषि और उद्योग की समस्या। जब कि अन्य देशो मे राजनैतिक तथा सामाजिक समस्याए भी उनके विकास का कारण हैं।

(८) जिस प्रकार उत्तरदाई शासन का आधार दल होते है, ठीक उसी प्रकार दलीय प्रथा के वास्तविक आधार सिद्धान्त होते हैं, न कि व्यक्ति। जापान के राजनैतिक दलो मे व्यक्ति की प्रधानता है, सिद्धान्त की नही। वहा के दलो के जन्मदाता नेता होते हैं जिनके छोड जाने के पश्चात दलो का अस्तित्व समाप्त हो जाता है।

परिशिष्ट 'क'

THE CONSTITUTION OF JAPAN

We, the Japanese people, acting through our duly elected representatives in the National Diet, determined that we shall secure for ourselves and our posterity the fruits of peaceful co operation with all nations and the blessings of liberty throughout this land, and resolved that never again shall we be visited with the horrors of war through the action of government, do proclaim that sovereign power resides with the people and do firmly establish this Constitution. Government is a sacred trust of the people, the authority for which is derived from the people, the powers of which are exercised by the representatives of the people and the benefits of which are enjoyed by the people. This is a universal principle of mankind upon which this Constitution We reject and revoke all constitutions, laws, ordinances and rescripts in conflict herewith

We, the Japanese people, desire peace for all time and are deeply conscious of the high ideals controlling human relationships and we have determined to preserve our security and existence, trusting in the justice and faith of the peace loving peoples of the world We desire to occupy an honoured place in an international society striving for the preservation of place, and the banishment of tyanny and slavery, oppression and intolerance for all time from the earth, We recognize that all peoples of the world have the right to live in peace, free from fear and want.

We believe that no nation is responsible to itself alone, but that laws of political morality are universal and that obedience to such laws is incumbent upon all nations who would sustain their own sovereignty and justify the sovereign relationship with other nations.

We, the Japanese people our national honour to accomplish these high ideals and purposes with all our resources.

CHAPTER I. THE EMPEROR

ARTICLE 1 *The Emperor shall be the symbol of the State and* of the unity of the people, deriving his position from the people with whom resides sovereign power.

ARTICLE 2. The Imperial Throne shall be dynastic and succeeded to in accordance with the Imperial House Law passed by the Diet.

ARTICLE 3 The advice and approval of the Cabinet shall be required for all acts of the Emperor in matters of state, and the Cabinet shall be responsible therefor

ARTICLE 4 The Emperor shall perform only such acts in matters of state as are provided for in this Constitution and he shall not have powers related to government

The Emperor may delegate the performance of his acts in matters of state as may be provided by law

ARTICLE 5 When, in accordance with the Imperial House Law, a Regency is established, the Regent shall perform his acts in the Emperor's name In this case, paragraph one of the preceding article will be applicable

ARTICLE 6 The Emperor shall appoint the Prime Minister as designated by the Diet

The Emperor shall appoint the Chief Judge of the Supreme Court as designated by the Cabinet

ARTICLE 7 The Emperor, with the advice and approval of the Cabinet, shall perform the following acts in matters of state on behalf of the people

Promulgation of amendments of the constitution, laws, cabinet orders and treaties

Convocation of the Diet

Dissolution of the House of Representatives

Proclamation of general election of members of the Diet
Attestation of the appointment and dismissal of Ministers of State and other officials as provided for by law and of full powers and credentials of Ambassadors and Ministers

Attestation of general and special amnesty, commutation of punishment, reprieve, and restoration of rights
Awarding of honours

Attestation of instruments of ratification and other diplomatic documents as provided for by law

Receiving foreign ambassadors and ministers

Performance of ceremonial functions

ARTICLE 8 No property can be given to or received by, the Imperial House, nor can any gifts be made therefrom, without the authorization of the Diet

CHAPTER II RENUNCIATION OF WAR

ARTICLE 9 Aspiring sincerely to an international peace based on justice and order, the Japanese people forever renounce war as a sovereign right of the nation and the threat or use of force as means of settling international disputes

In order to accomplish the aim of the preceding para graph, land, sea, and air forces, as well as other war potential will never be maintained The right of belligerency of the state will not be recognized

CHAPTER III RIGHTS AND DUTIES OF THE PEOPLE

ARTICLE 10 The conditions necessary for being a Japanese national shall be determined by law

ARTICLE 11 The people shall not be prevented from enjoying any of the fundamental human rights These fundamental human rights guaranteed to the people by this Constitution shall be conferred upon the people of this and future genera tions as eternal and inviolate rights

ARTICLE 12 The freedom and rights guaranteed to the people by this Constitution shall be mainted by the constant endea vour of the people, who shall refrain from any abuse of these freedoms and rights and shall always be reponsible for utili zing them for the public welfare

ARTICLE 13 All of the people shall be respected as indivi duals Their right to life, liberty, and the pursuit of happi ness shall, to the extent that it does not interfere with the public welfare, be the supreme consideration in legislation and in other govermental affairs

ARTICLE 14 All of the people are equal under the law and there shall be no discrimination in political, economic or so- cial relations because of race creed, sex, social status or fami ly origin

Peers and peerage shall not be recognized

No privilege shall accompany any award of honour deco ration or any distinction nor shall any such award be valid beyond the lifetime of the individual who now holds or here after may receive it

ARTICLE 15 The people have the inalienable right to choose their public officials and to dismiss them

All public officials are servants of the whole community and not of any group thereof

Universal adult suffrage is guaranteed with regard to the election of public officials

In all elections, secrecy of the ballot shall not be violated A voter shall not be answerable, publicly or privately for the choice he has made

ARTICLE 16 Every person shall have the right of peaceful petition for the redress of damage for the removal of public

officials, for the enactment, repeal or amendment of laws, ordinances or regulations and for other matters, nor shall any person be in any way discriminated against for sponsoring such a petition

ARTICLE 17 Every person may sue for redress as provided by law from the State or public entity, in case he has suffered damage through illegal act of any public official

ARTICLE 18 No person shall be held in bondage of any kind Involuntary servitude, except as punishment for crime, is prohibited

ARTICLE 19 Freedom of thought and conscience shall not be violated.

ARTICLE 20 Freedom of religion is guaranteed to all No religious organization shall receive any privileges from the State, nor exercise any political authority

No person shall be compelled to take part in any religious act, celebration, rite or practice

The State and its organs shall refrain from religious education or any other religious activity

ARTICLE 21 Freedom of assembly and association as well as speech, press and all other forms of expression are guaranteed

No censorship shall be maintained, nor shall the secrecy of any means of communication be violated

ARTICLE 22 Every person shall have freedom to choose and change his residence and to choose his occupation to the extent that it does not interfere with the public welfare

Freedom of all persons to move to a foreign country and to divest themselves of their nationality shall be inviolate

ARTICLE 23 Academic freedom is guaranteed

ARTICLE 24 Marriage shall be based only on the mutual consent of both sexes and it shall be maintained through mutual co-operation with the equal rights of husband and wife as a basis

With regard to choice of spouse, property rights, inheritance, choice of domicile, divorce and other matters pertaining to marriage and the family, laws shall be enacted from the standpoint of individual dignity and the essential equality of the sexes

ARTICLE 25 All people shall have the right to maintain the minimum standards of wholesome and cultured living.

In all spheres of life, the State shall use its endeavours for the promotion and extension of social welfare and security and of public health

ARTICLE 26 All people shall have the right to receive an equal education correspondent to their ability, as provided by law.

All people shall be obligated to have all boys and girls under their protection receive ordinary education as provided for by law Such compulsory education shall be free

ARTICLE 27 All people shall have the right and the obligation to work.

Standards for wages, hours, rest and other working conditions shall be fixed by law

Children shall not be exploited

ARTICLE 28 The right of workers to organize and to bargain and act collectively is guaranteed

ARTICLE 29 The right to own or to hold property is inviolable

Property rights shall be defined by law, in confirmity with the Public welfare

Private property may be taken for Public use upon just compensation therefor

ARTICLE 30 The people shall be liable to taxation as provided by law

ARTICLE 31 No person shall be deprived of life or liberty, nor shall any other criminal penalty be imposed, except according to procedure established by law

ARTICLE 32 No person shall be denied the right of access to the courts

ARTICLE 33 No person shall be apprehended except upon warrant issued by a competent judicial officer which specifies the offence with which the person is charged, unless he is apprehended the offence being committed

ARTICLE 34 No person shall be arrested or detained without being at once informed of the charges against him or without the immediate privilege of counsel nor shall he be detained without adequate cause, and upon demand of any person such cause must be immediately shown in open court in his presence and the presence of his counsel.

ARTICLE 35 The right of all persons to be secure in their homes papers and effects against entries, searches and seizures shall not be impaired except upon warrant issued for adequate cause and particularly describing the place to be searched and things to be seized, or except as provided by Article 33.

Each search or seizure shall be made upon separate warrant issued by a competent judicial officer

ARTICLE 36 The infliction of torture by any public officer and cruel punishments are absolutely forbidden

ARTICLE 37 In all criminal cases the accused shall enjoy the right to a speedy and public trial by an impartial tribunal

All people shall be obligated to have all boys and girls under their protection receive ordinary education as provided for by law Such compulsory education shall be free

ARTICLE 27 All people shall have the right and the obligation to work.

Standards for wages, hours, rest and other working con ditions shall be fixed by law

Children shall not be exploited

ARTICLE 28 The right of workers to organize and to bargain and act collectively is guaranteed

ARTICLE 29 The right to own or to hold property is inviolable

Property rights shall be defined by law, in confirmity with the Public welfare

Private property may be taken to Public use upon just compensation therefor

ARTICLE 30 The people shall be liable to taxation as provided by law

ARTICLE 31 No person shall be deprived of life or liberty, nor shall any other criminal penalty be imposed, except according to procedure established by law

ARTICLE 32 No person shall be denied the right of access to the courts

ARTICLE 33 No person shall be apprehended except upon warrant issued by a competent judicial officer which specifies the offence with which the person is charged, unless he is apprehended the offence being committed

ARTICLE 34 No person shall be arrested or detained without being at once informed of the charges against him or without the immediate privilege of counsel nor shall he be detained without adequate cause, and upon demand of any person such cause must be immediately shown in open court in his presence and the presence of his counsel.

ARTICLE 35 The right of all persons to be secure in their homes, papers and effects against entries, searches and seizures shall not be impaired except upon warrant issued for adequate cause and particularly describing the place to be searched and things to be seized, or except as provided by Article 33.

Each search or seizure shall be made upon separate warrant issued by a competent judicial officer

ARTICLE 36 The infliction of torture by any public officer and cruel punishments are absolutely forbidden

ARTICLE 37 In all criminal cases the accused shall enjoy the right to a speedy and public trial by an impartial tribunal

He shall be permitted full opportunity to examine all witnesses and he shall have the right of compulsory process for obtaining witnesses on his behalf at public expense

At all times the accused shall have the assistance of competent counsel who shall if the accused is unable to secure the same by his own efforts be assigned to his use by the State

ARTICLE 38 No p rson shall be compelled to testify against himself

Confession made under compulsion torture or threat, or after prolonged arrest or detention shall not be admitted in evidence

No person shall be convicted or punished in cases where the only proof against him is his own confession

ARTICLE 39 No person shall be held criminally liable for an act which was lawful at the time it was committed, or of which he has been acquitted nor shall he be placed in double jeopardy

ARTICLE 40 Any person in case he is acquitted after he has be n arrested or detained may sue the State for redress as provided by law

CHAPTER IV THE DIET

ARTICLE 41 The Diet shall be the highest organ of the state power, and shall be the sole law making organ of the State

ARTICLE 42 The Diet shall consist of two Houses, namely the House of Representatives and the House of Councillors

ARTICLE 43 Both Houses shall consist of elected members, representative of all the people

The number of the members of each House shall be fixed by law

ARTICLE 44 The qualifications of members of both Houses and their electors shall be fixed by law However, there shall be no discrimination because of race, creed, sex, social status, family origin education property or income

ARTICLE 45 The term of office of members of the House of Representatives shall be four years However, the term shall be terminated before the full term is up in case the House of Representatives is dissolved

ARTICLE 46 The term of office of members of the House of Councillors shall be six years, and election for half the mem bers shall take place every three years

ARTICLE 47 Electoral districts method of voting and other matters pertaining to the method of election of members of both Houses shall be fixed by law

ARTICLE 48 No person shall be permitted to be a member of both Houses simultaneously

ARTICLE 49 Members of both Houses shall receive appropriate annual payment from the national treasury in accordance with law

ARTICLE 50 Except in cases Provided by law, members of both Houses shall be exempted from apprehension while the Diet is in session, and any members apprehended before the opening of the session shall be freed during the term of session upon demand of the House

ARTICLE 51 Members of both Houses shall not be held liable outside the House for speeches, debates or votes cast inside the house

ARTICLE 52 An ordinary session of the Diet shall be convoked once per year

ARTICLE 53 The Cabinet may determine to convoke extraordinary sessions of the Diet When a quarter or more of the total members of either House makes the demand, the Cabinet must determine on such convocation

ARTICLE 54 When the House of Representatives is dissolved, there must be a general election of members of the House of Representatives within forty (40) days from the date of dissolution, and the Diet must be convoked within thirty (30) days from the date of the election

When the House of Representatives is dissolved, the House of Councillors is closed at the same time However the Cabinet may in time of national emergency convoke the House of Councillors in emergency sesson

Measures taken at such session as mentioned in the proviso of the preceding paragraph shall be provisional and shall become null and voild unless agreed to by the House of Representatives within a period of ten (10) days after the opening of the next session of the Diet

ARTICLE 55 Each House shall judge disputes related to qualifications of its members However, in order to deny a seat to any member, it is necessary to pass a resolution by a majority of two thirds or more of the members present

ARTICLE 56 Buisness cannot be transacted in either House unless one third or more of total membership is present

All matters shall be decided, in each House, by a majority of those present, except as elsewhere provided in the Constitution, and in case of a tie, the presiding officer shall decide the issue

ARTICLE 57 Deliberation in each House shall be public However, a secret meeting may be held where a majority of two

third or more of those members present passes a resolution therefor.

Each House shall keep a record of proceedings. This record shall be published and given general circulation, excepting such parts of proceedings of secret session as may be deemed to require secrecy.

Upon demand of one-fifth or more of the members present votes of the members on any matter shall be recorded in the minutes

ARTICLE 58. Each House shall select its own president and other officials.

Each House shall establish its rules pertaining to meetings proceedings and internal discipline, and may punish members for disorderly conduct. However, in order to expel a member, a majority of two thirds or more of those members present must pass a resolution thereon

ARTICLE 59. A bill becomes a law on passage by both Houses, except as otherwise provided by the Constitution

A bill which is passed by the House of Representatives, and upon which the House of Councillors makes a decision different from that of the House of Representatives, becomes a law when passed a second time by the House of Representatives by a majority of two-third or more of the members present

The provision of the preceding paragraph does not preclude the House of Representatives from calling for the meeting of a joint committee of both Houses, provided for by law.

Failure by the House of Councillors to take final action within sixty (60) days after receipt of a bill passed by the House of Representatives, time in recess excepted may be determined by the House of Representatives to constitute a rejection of the said bill by the House of Councillors

ARTICLE 60. The budget must first be submitted to the House of Representatives

Upon consideration of the budget, when the House of Councillors makes a decision different from that of the House of Representatives, and when no agreement can be reached even through a joint committee of both Houses, provided for by law, or in the case of failure by the House of Councillors to take final action within thirty (30) days, the period of recess excluded after the receipt of the budget passed by the House of Representatives, the decision of the House of Representatives shall be the decision of the Diet

ARTICLE 61. The second paragraph of the preceding article applies also to the Diet approval required for the conclusion of treaties

ARTICLE 62 Each House may conduct investigations in relation to government and may demand the presence and testimony of witnesses and the production of records.

ARTICLE 63 The Prime Minister and other Ministers of State may, at any time, appear in either House for the purpose of speaking on bills, regardless of whether they are members of the House or not. They must appear when their presence is required in order to give answers or explanations.

ARTICLE 64 The Diet shall set up an impeachment court from among the members of both Houses for the purpose of trying those judges against whom removal proceedings have been instituted.

Matters relating to impeachment shall be provided by law.

CHAPTER V THE CABINET

ARTICLE 65 Executive power shall be vested in the Cabinet.

ARTICLE 66 The Cabinet shall consist of the Prime Minister, who shall be its head, and other Ministers of State, as provided for by law.

The Prime Minister and other Ministers of State must be civilians.

The Cabinet, in the exercise of executive power, shall be collectively responsible to the Diet.

ARTICLE 67 The Prime Minister shall be designated from among the members of the Diet by a resolution of the Diet. This designation shall precede all other business.

If the House of Representatives and the House of Councillors disagree and if no agreement can be reached even through a joint committee of both Houses, provided for by law, or the House of the Councillors fails to make designation within ten (10) days, exclusive of the period of recess, after the House of Representatives has made designation, the decision of the House Representatives shall be the decision of the Diet.

ARTICLE 68 The Prime Minister shall appoint the Ministers of State. However, a majority of their number must be chosen from among the members of the Diet.

The Prime Minister may remove the Ministers of State as he chooses.

ARTICLE 69 If the House of Representatives passes a non confidence resolution, or rejects a confidence resolution, the Cabinet shall resign en masse, unless the House of Representatives is dissolved within ten (10) days.

ARTICLE 70 When there is a vacancy in the post of Prime Minister, or upon the first convocation of the Diet

general election of members of the House of Representatives, the Cabinat shall resign en masse

ARTICLE 71 In the cases mentioned in the two preceding articles, the Cabinet shall continue its functions until the time when a new Prime Minister is appointed

ARTICLE 72 The Prime Minister, representing the Cabinet submits bills reports on general national affairs and foreign relations to the Diet and exercise control and supervision over various administrative branches

ARTICLE 73 The Cabinet, in addition to other general administrative functions, shall perform the following functions

Administer the law faithfully, conduct affairs of state

Manage foreign affairs

Conclude treaties However, it shall obtain prior or, depending on circumstances, subsequent approval of the Diet

Administer the civil service, in accordance with standards established by law

Prepare the budget, and present it to the Diet

Enact cabinet orders in order to execute the provisions of this Constitution and of the law However, it cannot include penal provisions in such cabinet orders unless authorized by such law

Decide on general amnesty, special amnesty, commutation of punishment, reprieve, and restoration of rights

ARTICLE 74 All laws and cabinet orders shall be signed by the competent Ministers of State and countersigned by the Prime Minister

ARTICLE 75 The Ministers of State, during their tenure of office, shall not be subject to legal action without the consent of the Prime Minister However, the right to take that action is not impaired hereby

CHAPTER VI JUDICIARY

ARTICLE 76 The whole judicial power is vested in a Supreme Court and in such inferior courts as are established by law

No extraordinary tribunal shall be established nor shall any organ or agency of the Executive be given final judicial power

All judges shall be independent in the exercise of their conscience and shall be bound only by this Constitution and the laws

ARTICLE 77 The Supreme Court is vested with the rule making

power under which it determines the rules of procedure and of practice, and of matters relating to attorneys, the internal discipline of the courts and the administration of judicial affairs

Public procurators shall be subject to the rule making power of the Supreme Court

The Supreme Court may delegate the power to make rules for inferior courts to such courts

ARTICLE 78 Judges shall not be removed except by public impeachment unless judicially declared mentally or physically incompetent to perform official duties No disciplinary action against judges shall be administered by any executive organ or agency,

ARTICLE 79 The Supreme Court shall consist of a Chief Judge and such numbers of judges as may be determined by law all such judges excepting the Chief Judge shall be appointed by the Cabinet

The appointment of the judges of the Supreme Court shall be reviewed by the people at the first general election of mem bers of the House of Representatives following their appoint ment, and shall be reviewed again at the first general election of members of the House of Representatives after a lapse of ten (10) years, and in the same manner thereafter

In cases mentioned in the foregoing paragrhph, when the majority of the voters favours the dismissal of a judge, he shall be dismissed

Matters pertaining to review shall be prescribed by law

The Judge of the Supreme Court shall be retired upon the attainment of the age as fixed by law

All such judges shall receive at regular stated intervals, adequate compensation which shall not be decreased du ring their terms of office

ARTICLE 80 The judges of the inferior courts shall be appo inted by the Cabinet from a list of persons nominated by the Supreme Court All such judges shall hold office for a term of ten (10) years with privilege of appointment, provided that they shall be retired upon the attainment of the age as fixed by law

The judges of the inferior courts shall receive, at regular stated intervals, adequate compensation which shall not be de- creased during their terms of office

ARTICLE 81 The Supreme Gourt is the court of r sort with power to determine the constitutionality order regulation or official act

ARTICLE 82 Trials shall de conducted and red publicly Where a court unanimously

city to be dangerous to public order or morals, a trial may be conducted privately, but trials of political offences, offences involving the press or cases wherein the rights of people as guaranteed in Chapter III of this Constitution are in question shall always be conducted publicly.

CHAPTER VII FINANCE

ARTICLE 83 The power to administer national finances shall be exercised as the Diet shall determine.

ARTICLE 84 No new taxes shall be imposed or existing ones modified except by law or under such conditions as law may prescribe

ARTICLE 85 No money shall be expended, nor shall the State obligate itself, except as authorized by the Diet

ARTICLE 86 The Cabinet shall prepare and submit to the Diet for its consideration and decision a budget for each fiscal year

ARTICLE 87 In order to provide for unforeseen deficiencies in the budget, a reserve fund may be authorized by the Diet to be expended upon the responsibility of the Cabinet.

The Cabinet must get subsequent approval of the Diet for all payments from the reserve fund

ARTICLE 88. All property of the Imperial Household shall belong to the State. All expenses of the Imperial Household shall be appropriated by the Diet in the budget.

ARTICLE 89 No public money or other property shall be expended or appropriated for the use, benefit or maintenance of *any religious institution or association, or for any charitable,* educational or benevolent enterprises not under the control of public authority

ARTICLE 90 Final accounts of the expenditures and revenues of the State shall be audited annually by a Board of Audit and submitted by the Cabinet to the Diet, together with the statement of audit during the fiscal year immediately following the period covered

The organization and competency of the Board of Audit shall be determined by law

ARTICLE 91 At regular intervals and at least annually the Cabinet shall report to the Diet and the people on the state of national finances

CHAPTER VIII LOCAL SELF GOVERNMENT

ARTICLE 92 Regulations concerning organization and operations of local public entities shall be fixed by law in accordance with the principle of local autonomy.

CHAPTER XI. SUPPLEMENTARY PROVISIONS

ARTICLE 100. This Constitution shall be enforced as from the day when the period of six months will have elapsed counting from the day of its promulgation.

The enactment of laws necessary for the enforcement of this Constitution, the election of members of the House of Councillors, and the procedure for the convocation of the Diet and other preparatory procedures necessary for the enforcement of this Constitution, may be executed before the day prescribed in the preceding paragraph.

ARTICLE 101. If the House of Councillors is not constituted before the effective date of this Constitution, the House of Representatives shall function as the Diet until such time as the House of Councillors shall be constituted

ARTICLE 102. The term of office for half the members of the House of Councillors serving in the first term under this Constitution shall bet hree years. Members falling under this category shall be determined in accordance with law.

ARTICLE 103. The Ministers of State, members of the House of Representatives, and judges in office on the effective date of this Constitution, and all other public officials who occupy positions corresponding to such positions as are recognized by this Constitution, shall not forfeit their positions automatically on account of the enforcement of this Constitution unless otherwise specified by law. When, however, successors are appointed under the provisions of this Constitution they shall forfeit their positions as a matter of course.